गायत्री की २४ शक्तिधाराएँ

आद्यशक्ति गायत्री + ब्राह्मी + वैष्णवी + शाम्भवी
वेदमाता + देवमाता + विश्वमाता + ऋतम्भरा
मन्दाकिनी + अजपा + ऋद्धि + सिद्धि
सावित्री + सरस्वती + लक्ष्मी + दुर्गा
कुण्डलिनी + प्राणाग्नि + भवानी + भुवनेश्वरी
अन्नपूर्णा + महामाया + पयस्विनी + त्रिपुरा

श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री की चौबीस शक्तियाँ

गायत्री भारतीय धर्म–दर्शन की आत्मा है । उसे परम प्रेरक गुरुमंत्र कहा गया है । गुरु शिक्षा भी देते हैं और सामर्थ्य भी । गायत्री में सद्ज्ञान की ब्रह्म चेतना और सत्प्रयोजन पूरा कर सकने की प्रचण्ड शक्ति भरी पड़ी है । इसलिए उसे ब्रह्मवर्चस् भी कहते हैं ।

गायत्री का उपास्य सूर्य–सविता है । सविता का तेजस सहस्रांशु कहलाता है । उसके सात रंग के सात अश्व हैं और सहस्र किरणें सहस्र शस्त्र गायत्री की सहस्र शक्तियाँ हैं । इनका उल्लेख–संकेत उसके सहस्र नामों में वर्णित है । गायत्री सहस्र नाम प्रख्यात है । इसमें अष्टोत्तर शत अधिक प्रचलित हैं । इनमें भी चौबीस की प्रमुखता है । विश्वामित्र तन्त्र में इन चौबीस प्रमुख नामों का उल्लेख है । इन शक्तियों में से बारह दक्षिण पक्षीय हैं और बारह वाम पक्षीय । दक्षिण पक्ष को आगम और वाम पक्ष को निगम कहते हैं । कहा गया है–

गायत्री बहुनामास्ति संयुक्ता देव शक्तिभिः ।
सर्व सिद्धिषु व्याप्ता सा इष्टा मुनिभिराहता ।।

'गायत्री के असंख्य नाम हैं, समस्त देव शक्तियाँ उसी से अनुप्राणित हैं, समस्त सिद्धियों में उसी का दर्शन होता है ।

चतुर्विंशति साहस्र महा प्रज्ञा मुखं मतम् ।
चतुर्विंशक्ति शवे चैतु ज्ञेयं मुख्यं मुनीषिभिः ।।

महाप्रज्ञा के चौबीस हजार नाम प्रधान हैं, इनमें चौबीस को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है ।

तत्रापिं च सहस्रं तु प्रधान परिकीर्तिम् ।
अष्टोत्तरशतं मुख्यं तेषुक्तिप्रो महर्षिभिः ।।

उन चौबीस सौ नामों में भी मात्र सहस्र नाम ही सर्वविदित हैं । सहस्रों में से एक सौ आठ चुने जा सकते हैं ।

चतुर्विंशतिदेवास्याः गायत्र्याश्चाक्षराणि तु ।
सन्ति सर्वसमर्थानि तस्याः सादान्वितानि च ।।

चौबीस अक्षरों वाली सर्व समर्थ गायत्री के चौबीस नाम भी ऐसे ही हैं, जिनमें सार रूप से गायत्री के वैभव विस्तार का आभास मिल जाता है ।

चतुर्विंशतिकेष्वेवं नामसु द्वादमैव तु ।
वैदिकानि तथाऽन्यानि शेषाणि तान्त्रिकानि सु ।।

गायत्री के चौबीस नामों में बारह वैदिक वर्ग के हैं और बारह तान्त्रिक वर्ग के ।

चतुर्विंशंतु वर्णेषु चतुर्विंशति शक्तयः ।
शक्ति रूपानुसारं च तासां पूजाविधीयते ।।

गायत्री के चौबीस अक्षरों में चौबीस देव शक्तियाँ निवास करती हैं । इसलिए उनके अनुरूपों की ही पूजा-अर्चा की जाती है ।

आद्य शक्तिस्तथा ब्राह्मी, वैष्णवी शम्भवीति च ।
वेदमाता देवमाता विश्वमाता ऋतम्भरा ।।
मन्दाकिन्यजपा चैव, ऋद्धि सिद्धि प्रकीर्तिता ।
वैदिकानि तु नामानि पूर्वोक्तानि कि द्वादश ।।

(१) आद्यशक्ति (२) ब्राह्मी (३) वैष्णवी (४) शाम्भवी (५) वेदमाता (६) देवमाता (७) विश्वमाता (८) ऋतम्भरा (९) मन्दाकिनी (१०) अजपा (११) ऋद्धि (१२) सिद्धि-इन बारह को वैदिकी कहा गया है ।

सावित्री सरस्वती ज्ञेया, लक्ष्मी दुर्गा तथैव च ।
कुण्डलिनी प्राणाग्निश्च भवानी भुवनेश्वरी ।।
अन्नपूर्णेति नामानि महामाया पयस्विनी ।
त्रिपुरा चैवेति विज्ञेया तान्त्रिकानि च द्वादश ।।

(१) सावित्री (२) सरस्वती (३) लक्ष्मी (४) दुर्गा (५) कुण्डलिनी (६) प्राणग्नि (७) भवानी (८) भुवनेश्वरी (९) अन्नपूर्णा (१०) महामाया (११) पयस्विनी और (१२) त्रिपुरा-इन बारह को तान्त्रिकी कहा गया है ।

बारह ज्ञान पक्ष की बारह विज्ञान पक्ष की शक्तियों के मिलन से चौबीस अक्षर वाला गायत्री मन्त्र विनिर्मित हुआ ।

गायत्री ब्रह्म चेतना है । समस्त ब्रह्माण्ड के अन्तराल में वही संव्याप्त है । जड़ जगत का समस्त संचालन उसी की प्रेरणा एवं व्यवस्था के अन्तर्गत हो रहा है । अन्य प्राणियों में उसका उतना ही अंश है, जिससे

अपना जीवन निर्वाह सुविधापूर्वक चल सके । मनुष्य में उसकी यह विशेषता सामान्य रूप से मस्तिष्क क्षेत्र की अधिष्ठात्री बुद्धि के रूप में दृष्टिगोचर होती है । सुख–सुविधाओं को जुटाने वाले साधन इसी के सहारे प्राप्त होते हैं । असामान्य रूप से यह ब्रह्म चेतना प्रज्ञा है । यह अन्तःकरण की गहराई में रहती है और प्रायः प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है । पुरुषार्थी उसे प्रयत्न पूर्वक जगाते और क्रियाशील बनाते हैं । इस जागरण का प्रतिफल बहिरंग और अन्तरंग में मुक्ति बनकर प्रकट होता है । बुद्धिबल से मनुष्य वैभववान बनता है, प्रज्ञा बल से ऐश्वर्यवान । वैभव का स्वरूप है–धन, बल, कौशल, यश, प्रभाव, ऐश्वर्य का रूप महान व्यक्तित्व है । इसके पाँच वर्ग हैं । सन्त, ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि । पाँच देवों का वर्गीकरण इन्हीं विशेषताओं के अनुपात से किया है । विभिन्न स्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होने वाले उत्कृष्टता के ही पाँच स्वरूप हैं । वैभव सम्पन्नों को दैत्य (समृद्ध) और ऐश्वर्यमान महामानवों को देव (उदात्त) कहा गया है ।

वैभव उपार्जन करने के लिए आवश्यक ज्ञान और साधन जिस प्रकार प्राप्त किए जा सकते हैं, इसे शिक्षा कहते हैं । ऐश्वर्यवान बनने के लिए जिस ज्ञान एवं उपाय को अपनाना पड़ता है, उसका परिचय विद्या से मिलता है । विद्या का पूरा नाम ऋतम्भरा प्रज्ञा या विद्या है । इसका ज्ञान पक्ष योग और साधन पक्ष तप कहलाता है । योग उपासना है और तप साधना । इन्हें अपनाना परम पुरुषार्थ कहलाता है । अन्तराल में प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हुई बीज रूप में विद्यमान शक्ति को सक्रिय बनाने में जितनी सफलता मिलती है, वह उतना ही बड़ा महामानव–सिद्ध पुरुष देवात्मा एवं अवतार कहलाता है ।

ब्रह्म चेतना–गायत्री सर्व व्यापक होने से सर्व शक्तिमान है । उसके साथ विशिष्ट घनिष्ठता स्थापित करने के प्रयास साधना कहलाते हैं । इस सान्निध्य में प्रधान माध्यम भक्ति है । भक्ति अर्थात् भाव संवेदना । भाव शरीरधारियों के साथ ही विकसित हो सकता है । साधना की सफलता के लिए भाव भरी साधना अनिवार्य है । मनुष्य को जिस स्तर का चेतना–तंत्र मिला है, उसकी दिव्य शक्तियों को देव–काया में प्रतिष्ठापित करने के उपरान्त ही ध्यान धारणा का प्रयोजन पूरा हो सकता है ।

तत्वदर्शियों ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समस्त दिव्य शक्तियों के स्वरूप मानव आकृति में प्रतिष्ठित किए हैं । यही देवता और देवियाँ हैं । गायत्री को आद्य शक्ति के रूप में मान्यता दी गई है । निराकार उपासक प्रातःकाल के स्वर्णिम सूर्य के रूप में उसकी धारणा करते हैं ।

आद्य शक्ति गायत्री को संक्षेप में विश्वव्यापी ब्रह्म चेतना समझा जाना चाहिए । उसकी असंख्य तरंगें हैं अर्थात् उस एक ही महासागर में असंख्यों लहरें उठती हैं । उनके अस्तित्व पृथक–पृथक दीखते हुए भी वस्तुतः उन्हें सागर की जलराशि के अंग–अवयव ही माना जायेगा । गायत्री की सहस्र शक्तियों में जिन २४ की प्रधानता है, वे विभिन्न प्रयोज़नों के लिए प्रयुक्त होने वाली शक्ति धाराएँ हैं । २४ अवतार, २४ देवता, २४ ऋषि, २४ गीताएँ आदि में गायत्री के २४ अक्षरों का ही तत्वज्ञान विभिन्न पृष्ठ भूमियों में बताया, समझाया गया है । इन २४ अक्षरों में सन्निहित शक्तियों की उपासना २४ देवियों के रूप में की जाती है ।

तथ्य को समझने में बिजली के उदाहरण से अधिक सरलता पड़ेगी । बिजली सर्वत्र संव्याप्त ऊर्जा तत्व है । यह सर्वत्र संव्याप्त और निराकार है । उसे विशेष मात्रा में उपार्जित एवं एकत्रित करने के लिए बिजली घर बनाये जाते हैं । उपलब्ध विद्युत शक्ति को स्विच तक पहुँचाया जाता है । स्विच के साथ जिस प्रकार का यन्त्र जोड़ दिया जाता है बिजली उसी प्रयोजन को पूरा करने लगती है । बत्ती जलाकर प्रकाश, पंखा चला कर हवा, हीटर से गर्मी, कूलर से ठण्डक, रेडियो से आवाज टेलीविजन से दृश्य, मोटर से गति–स्पर्श से झटका जैसे अनेकानेक प्रयोजन पूरे होते हैं । इनका लाभ एवं अनुभव अलग–अलग प्रकार का होता है । इन सबके यन्त्र भी अलग–अलग प्रकार के होते हैं । इतने पर भी विद्युत शक्ति के मूल स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता है । इन विविधताओं को उसके प्रयोगों की भिन्नताएँ भर कहा जा सकता है । आद्यशक्ति गायत्री एक ही है, पर उसका प्रयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिए करने पर नाम–रूप में भिन्नता आ जाती है और ऐसा भ्रम होने लगता है कि वे एक–दूसरे से पृथक् तो नही हैं ? विचारवान जानते हैं कि बिजली एक ही है । उद्देश्यों और प्रयोगों की भिन्नता के कारण उनके नाम रूप में अन्तर आता है और प्रथकता होने जैसा आभास

मिलता है । तत्वदर्शी प्रथकता में भी एकता का अनुभव करते हैं । गायत्री की २४ शक्तियों के बारे में ठीक इसी प्रकार समझा जाना चाहिए ।

पेड़ के कई अंग अवयव होते हैं । जड़, छाल, तना, टहनी, पत्ता, फूल, पराग, फल, बीज आदि । इन सबके नाम, रूप, स्वाद, गंध, गुण आदि भी सब मिला कर यह सारा परिवार वृक्ष की सत्ता में ही सन्निहित माना जाता है । गायत्री की २४ शक्तियाँ भी इसी प्रकार मानी जानी चाहिए । सूर्य के सात रंग के सात अश्व पृथक्–पृथक् निरूपित किए जाते हैं । उनके गुण, धर्म भी अलग–अलग होते हैं । इतने पर भी वे सूर्य–परिवार के अन्तर्गत ही हैं । गायत्री की २४ शक्तियों की उपासना को विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न नाम रूपों में किया जा सकता है, पर भ्रम नहीं होना चाहिए कि वे सभी स्वतंत्र एवं विरोधी हैं । उन्हें एक ही काया के विभिन्न अवयव एवं परस्पर पूरक मानकर चलना ही उपयुक्त है ।

१–आद्यशक्ति गायत्री

ब्रह्म एक है । उसकी इच्छा क्रीड़ा–कल्लोल की हुई । उसने एक से बहुत बनना चाहा, यह चाहना–इच्छा ही शक्ति बन गई । इच्छा शक्ति ही सर्वोपरि हे । उसी की सामर्थ्य से यह समस्त संसार बन कर खड़ा हो गया है । जड़–चेतन सृष्टि के मूल में परब्रह्म की जिस आकांक्षा का उदय हुआ, उसे ब्राह्मी शक्ति कहा गया । यही गायत्री है । संकल्प से प्रयत्न, प्रयत्न से पदार्थ का क्रम सृष्टि के आदि से बना है और अनन्त काल से चला आया है । प्रत्यक्ष तो पदार्थ ही दीखता है । सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिक जानते हैं कि पदार्थ की मूल सत्ता अणु संगठन पर आधारित है । यह अणु और कुछ नहीं, विद्युत् तरंगों से बने हुए गुच्छक मात्र हैं । यह सूक्ष्म हुआ । उससे गहराई में उतरने वाले तत्वदर्शी अध्यात्म वेत्ता जानते हैं कि विश्व व्यापी विद्युत् तरंगें भी स्वतंत्र नहीं हैं, वे ब्रह्म चेतना की प्रतिक्रिया भर हैं । जड़ जगत की पदार्थ सम्पदा में निरन्तर द्रुतगामी हलचलें होती हैं । इन हलचलों के पीछे उद्देश्य, संतुलन, विवेक, व्यवस्था का परिपूर्ण समन्वय है । 'इकालॉजी' के ज्ञाता भली प्रकार जानते हैं कि

सृष्टि के अन्तराल में कोई अत्यन्त दूरदर्शी, विवेकयुक्त सत्ता एवं सुव्यवस्था विद्यमान है । इसी सामर्थ्य की प्रेरणा से सृष्टि की समस्त हलचलें किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए गतिशील रहती हैं । यही 'आद्यशक्ति' है—इसी को गायत्री कहा गया है । साक्षी, दृष्टा, निर्विकार, निर्विकल्प, अविनय, निराकार, व्यापक ब्रह्म की सृष्टि व्यवस्था जिस सामर्थ्य के सहारे चलती है, वही गायत्री है ।

गायत्री त्रिपदा है । गंगा—यमुना—सरस्वती के संगम को तीर्थराज कहते हैं । गायत्री मंत्रराज है । सत्—चित्—आनन्द—"सत्यं—शिवं—सुन्दरम्", सत, रज, तम, ईश्वर—जीव—प्रकृति, भूलोक, भुवलोक, स्वःलोक का विस्तार त्रिपदा है । पदार्थों में ठोस, द्रव, वाष्प, प्राणियों में जल, थल, नभचर—सृष्टिक्रम के उत्पादन अभिवर्द्धन, परिवर्तन, गायत्री के ही तीन उपक्रम हैं । सर्दी, गर्मी, वर्षा की ऋतुएँ, दिन—रात्रि—संध्या—तीन काल में महाकाल की हलचलें देखी जा सकती हैं । प्राणाग्नि—कालाग्नि, योगाग्नि के रूप में त्रिपदा की ऊर्जा व्याप्त है ।

सृष्टि के आदि में ब्रह्म का प्रकटीकरण हुआ—यह ॐकार है । ॐकार के तीन भाग हैं—अ उ म् । उनके तीन विस्तार भूः—भुवः—स्वः हैं । उनके तीन चरण हैं । इस प्रकार शब्द ब्रह्म ही पल्लवित होकर गायत्री मन्त्र बना ।

पौराणिक कथा के अनुसार सृष्टि के आदि में विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल कर ब्रह्मा जी प्रकट हुए । उन्हें आकाश वाणी द्वारा गायत्री मंत्र मिला और उसकी उपासना करके सृजन की क्षमता प्राप्त करने का निर्देश हुआ । ब्रह्मा ने सौ वर्ष तक गायत्री का तप करके सृष्टि रचना की शक्ति एंव सामग्री प्राप्त की । यह कथा भी शब्द ब्रह्म की भाँति गायत्री को ही आद्या शक्ति सिद्ध करती है । ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग के अन्तर्गत संसार की समस्त विचार सम्पदा और भाव विविधता त्रिपदा गायत्री की परिधि में ही सन्निहित है ।

आद्या शक्ति के साथ सम्बन्ध बनाकर साधक सृष्टि की समीपता तक जा पहुँचता है और उन विशेषताओं से सम्पन्न बनता है, जो परब्रह्म में सन्निहित हैं । परब्रह्म का दर्शन एवं विलय ही जीवन लक्ष्य है । यह प्रयोजन आद्य शक्ति की सहायता से संभव होता है ।

आद्याशक्ति का साधक पर अवतरण ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में होता है और साधक ब्रह्मर्षि बन जाता है । नर–पशुओं की प्रवृत्तियाँ, वासना, तृष्णा, अहंता के कुचक्र में परिभ्रमण करती रहती हैं । नरदेवों की अन्तरात्मा में निष्ठा, प्रज्ञा एवं श्रद्धा की उच्चस्तरीय आस्थाएँ प्रगाढ़ बनती हैं और परिपक्व होती चली जाती हैं । निष्ठा अर्थात् सत्कर्म प्रज्ञा अर्थात् सद्ज्ञान । श्रद्धा अर्थात् सद्भाव । इन्हीं की सुखद प्रतिक्रिया–तृप्ति, तुष्टि एवं शान्ति के रूप में साधक के सामने आती हैं । तृप्ति अर्थात् संतोष, तुष्टि अर्थात् समाधान । शान्ति अर्थात् उल्लास उच्चस्तरीय भाव संवरण की उपलब्धि होने पर साधक सदा अपनी आस्थाओं का आनन्द लेते हुए रस विभोर हो जाता है । शोक–संताप से उसे आत्यन्तिक छुटकारा मिल जाता है । आद्याशक्ति की शरणागति के लिए बढ़ता हुआ हर कदम साधक को इन्हीं विभूतियों से लाभान्वित करता चलता है ।

२–ब्राह्मी

त्रिदेव प्रसिद्ध हैं–ब्रह्मा, विष्णु, महेश––उत्पादन, अभिवृद्धि, परिवर्तन । इन्हें ब्राह्मी कहा जाता है । सृजन उत्पादन में संलग्नता संसार की सबसे बड़ी विशेषता है । यह क्षमता धरती में है और जननी में है । अपने उत्पादनों से दूसरों को लाभान्वित करना, स्वयं धन्य बनना, इसी उत्कृष्टता के कारण धरती माता और जननी माता गौरवान्वित होती है । यह ब्राह्मी माता के अनुदान हैं, जिन्हें जो जितनी मात्रा में उपलब्ध करता है वह उसी अनुपात से महामानव बनता चला जाता है । ध्वंस दानवों का और सृजन देवों का सिद्धान्त है । इससे सृजन क्रियाओं में संलग्न मनुष्य ही देव–मानव कहलाते हैं, गायत्री की ब्राह्मी शक्ति की साधना करने से साधक में ब्रह्म–तेजस–ब्राह्मणत्व विकसित होता है । ब्राह्मण पृथ्वी के देवता माने जाते हैं । उन्हें भूदेव कहते हैं ।

सत्, रज, तम में–सत्यं, शिवं, सुन्दरम् में प्रथम वर्ण सत् था–सत्य का है । यही ब्राह्मी विशेषता है । उसका अवलम्बन ग्रहण करने से व्यक्तित्व–स्वभाव में सतोगुण बढ़ता है और आचार, व्यवहार में सतोगुण का–पवित्रता एवं सादगी का अनुदान निरन्तर बढ़ता जाता है ।

ब्राह्मी हंस वाहिनी है । उसके एक हाथ में पुस्तक दूसरे में कमण्डलु

है । किशोरी कन्या उसकी वय है । इन अलंकारों से ब्रह्मशक्ति का स्वरूप समझने में सहायता मिलती है और उसका अनुग्रह पाने का द्वार खुलता है । गायत्री का वाहन सामान्य हंस नहीं, मनुष्यों में पाये जाने वाले, राजहंस–परमहंस हैं । राजहंस–शालीन, सज्जन, श्रेष्ठ, आदर्श । परमहंस–तत्वज्ञानी, तपस्वी, परमार्थी, जीवन मुक्त । गायत्री उपासना के आधार पर साधक सामान्य मानवी स्तर से ऊँचा उठकर राजहंस बनता है । साधना की परिपक्वता से वह परमहंस की स्थिति तक पहुँच जाता है । देवात्मा सिद्ध पुरुष के रूप में दृष्टिगोचर होता है ।

नीर–क्षीर विवेक हंस का प्रधान गुण है । दूसरा है–मोती ही चुगना–कौड़ी को हाथ न लगाना । यही सतोगुण है । उत्कृष्ट चिन्तन–सद्विवेक और औचित्य को ही अपनाना–अनौचित्य से बचे रहना । यही हंस प्रवृत्ति है । ब्राह्मी चेतना का स्वरूप यही है, गायत्री का हंस वाहन है अर्थात् हंस प्रवृत्ति व्यक्तियों को ही वह महाशक्ति अपने निकटतम रखती है । दूसरा तात्पर्य यह है कि इस उपासना के फलस्वरूप साधक का सतोगुण क्रमशः बढ़ता ही चला जाता है ।

पुस्तक से सद्ज्ञान और कमण्डलु से सत्कार्य का संकेत है । गायत्री शक्ति के दोनों हाथों में यही वरदान रखे हैं । ब्राह्मी साधना से अन्तःकरण में उत्कृष्ट चिन्तन की तरंगें उठती हैं । क्रिया–कलाप में सत्कर्म करने का उल्लास एवं साहस उभरता है । गायत्री को ब्राह्मण की कामधेनु कहा गया है । उसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मी शक्ति कामधेनु का पयपान करने वाला साधक सच्चे अर्थों में ब्राह्मण बनता है और आत्म–संतोष, लोक–सम्मान तथा दैवी अनुग्रह के तीनों वरदान प्राप्त करता है ।

ऋद्धियों और सिद्धियों पर अधिकार ब्रह्म–परायण का होता है । जिसका बाह्य और अन्तर जीवन पवित्र है उसी को मन्त्र सिद्धि उपलब्ध होती है । इसके लिए आवश्यक पात्रता गायत्री की ब्रह्म धारा के सम्पर्क से प्राप्त होती है ।

सावित्री–सत्यवान की कथा में सावित्री ने सत्यवान को वरण किया था और उसे मृत्यु के मुख से छुड़ाने तथा लकड़हारे से राजा बना देने का अनुदान दिया था । सत्यवान साधक, सावित्री की सच्ची सहायता प्राप्त कर सके, ब्राह्मी शक्ति के माध्यम से यही पृष्ठभूमि बनती है ।

३–वैष्णवी :

विष्णु की शक्ति वैष्णवी है । वैष्णवी अर्थात् पालन कर्त्री । इसे व्यवस्था भी कह सकते हैं । उत्पादन आरम्भ है । अभिवर्धन 'मध्य' है । एक है शैशव–दूसरा है–यौवन । यौवन में प्रौढ़ता, परिपक्वता, सुव्यवस्था, की समझदारी भी होती है । साहस और पराक्रम का पुट रहता है । यही रजोगुण है । त्रिपदा की दूसरी धारा वैष्णवी है । इसे गंगा की सहायक यमुना कहा जा सकता है । इस साधना के साधक को इन सिद्धियों–विभूतियों एवं सत्प्रवृत्तियों की उपलब्धि होती है, जिनके आधार पर वह यथार्थवादी योजनाएँ बनाने में ही नहीं उन्हें सुव्यवस्था, तन्मयता एवं तत्परता के सहारे आगे बढ़ाने और सफल बनाने में समर्थ होता है ।

वैष्णवी को दूसरे अर्थों में लक्ष्मी कह सकते हैं । भौतिक क्षेत्र में इसी को सम्पन्नता और आत्मिक क्षेत्र में इसी को सुसंस्कारिता के नाम से पुकारा जाता है । विभिन्न स्तरों की सफलताएँ इसी आधार पर मिलती हैं । वैष्णवी का वाहन गरुड़ है । गरुड़ की कई विशिष्टताएँ हैं । एक तो उनकी दृष्टि अन्य सब पक्षियों की तुलना में अधिक तीक्ष्ण होती है । सुदूर आकाश में ऊँची उड़ान उड़ते समय भी जमीन पर रेंगता कोई सर्प मिल जाय तो वह उस पर बिजली की तरह टूटता है और क्षण भर में तोड़–मरोड़ कर रख देता है । गरुड़ की चाल अन्य पक्षियों की तुलना में कहीं अधिक तीव्र होती है, आलस्य और प्रमाद उससे कोसों दूर रहते हैं । उसे जागरूकता का प्रतीक माना जाता है ।

अव्यवस्था रूपी सर्प से घोर शत्रुता रखने वाली तथा उसे निरस्त करने के लिए टूट पड़ने वाली प्रकृति गरुड़ है । दूरदर्शिता अपनाने वाले लोगों को गरुड़ कहा जाता है, जिन्हें न आलस्य है न प्रमाद–वे गरुड़ । ऐसे ही प्रबल पराक्रमी लोगों को गरुड़ की तरह वैष्णवी का प्यार प्राप्त होता है ।

वैष्णवी की उपासना से समृद्धि का पथ प्रशस्त होता चला जाता है । वैष्णवी की साधना का प्रतिफल सम्पन्नता है । ऐसे साधकों की आन्तरिक दरिद्रता दूर हो जाती है । वे सद्गुण सम्पदाओं के धनी होते हैं, उन्हें सच्चे अर्थों में विभूतिवान कहा जा सकता है । साथ ही उन्हें मानसिक दरिद्रता का भी दुःख नहीं भोगना पड़ता है ।

विष्णु का नारी स्वरूप वैष्णवी है । उनके आयुध भी चार हैं—शंख, चक्र, गदा, पद्म । जहाँ चार हाथ हैं, वहाँ यह चारों हैं । जहाँ दो ही हाथ हैं, वहाँ शंख और चक्र दो ही आयुध हैं । शंख का अर्थ है संकल्प, सुनिश्चित का प्रकटीकरण उद्घोष । चक्र का अर्थ है—गति, सक्रियता । गदा का अर्थ है—शक्ति । पद्म का अर्थ है—सुषमा, कोमलता । इन चारों को देव गुण भी कह सकते हैं । देव अनुदान, वरदान भी देते हैं । जो आयुध विष्णु के हैं वे वैष्णवी के हैं । जिसमें यह चतुर्दिक आकर्षण होगा उस पर वैष्णवी की कृपा बरसेगी । उसी तथ्य को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिन पर वैष्णवी का अनुग्रह होगा उनमें आयुधों के रूप में उपरोक्त चारों सद्गुणों का अनुपात बढ़ता चला जायगा ।

४—शाम्भवी

त्रिपदा गायत्री का तीसरा प्रवाह शाम्भवी है । इसे उपयोगी परिवर्तन की शक्ति माना जाता है । दूसरे शब्दों में यह कायाकल्प की वह सामर्थ्य है जो जीर्णता को नवीनता में—मूर्च्छना को चेतना में—शिथिलता को सक्रियता में, मरण को जीवन में परिवर्तित करती है । पुनर्जीवन नव निर्माण इसी को कहते हैं । गायत्री की शाम्भवी शक्ति वह है जो अशक्त को शक्तिवान और कुरूप को सौन्दर्यवान बनाने में निरन्तर संलग्न रहती है । प्रकारान्तर से इसे शिव शक्ति भी कह सकते हैं ।

शाम्भवी के दो आयुध हैं—त्रिशूल व डमरू । त्रिशूल अर्थात् तीन धार वाला वह शस्त्र जो मनुष्य की आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधि दैविक विपत्तियों को विदीर्ण करने में पूरी तरह समर्थ है । मनुष्य जीवन में अनेकानेक कष्ट, संकट उत्पन्न करने वाले तीन कारण हैं—(१) अज्ञान (२) अभाव (३) अशक्ति । इन तीनों का निवारण करने वाले (१) ज्ञान, (२) पुरुषार्थ (३) संयम के तीन शस्त्र उठाने पड़ते हैं । इन तीनों का समन्वय त्रिशूल है । शांभवी की उपासना करने वाला त्रिशूल धारी बनता है । गायत्री साधना में यदि सच्ची लगन हो तो व्यक्तित्व में ऐसी प्रतिभा का विकास होता है, जो पिछड़ी हुई मनःस्थिति एवं परिस्थिति से उलट कर समृद्ध एवं समुन्नत बना सके ।

डमरू जागरण का, उत्साह का, अग्रगमन का प्रतीक है । शांभवी

के एक हाथ में डमरू होने का अर्थ है कि इस शक्तिधारा के सम्पर्क में आने पर नव जागरण का—पुरुषार्थ, प्रयासों में उत्साह का, ऊँचा उठने, आगे बढ़ने का साहस उत्पन्न होता है ।

शाम्भवी का वाहन वृषभ है । शिव को अपनी प्रकृति के अनुरूप सभी प्राणियों में यही भाया है । वृषभ बलिष्ठ भी होता है और परिश्रमी भी, सौम्य भी होता है और सहिष्णु भी । उसकी शक्ति सृजनात्मक प्रयोजनों में लगी रहती है । समर्थ होते हुए भी वह अपनी क्षमता को पूरी तरह सृजन प्रयोजनों में लगाये रहता है । ध्वंस में उसकी शक्ति प्रायः नहीं ही प्रयुक्त होती । वृषभ श्रम, साहस, धैर्य एवं सौजन्य का प्रतीक है । इस गुण की जहाँ जितनी मात्रा होगी वहाँ उतना ही अधिक स्नेह, सहयोग शाम्भवी का बरसेगा । इन सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन के लिए शाम्भवी की उपासना की जाती है ।

शाम्भवी के मस्तिष्क के मध्य में तीसरा नेत्र है । तीसरा नेत्र अर्थात् दिव्य दृष्टि का—दूरदर्शिता का उद्गम स्रोत । इसे ज्ञान चक्षु भी कहते हैं । अतीन्द्रिय शक्तियों के सन्दर्भ में उसे दूरदर्शन, परोक्ष दर्शन, भविष्य दर्शन आदि को केन्द्र संस्थान माना जाता है, यही तत्वदर्शियों की विन्दु—साधना का आज्ञाचक्र है । इसी के खुलने से अशुभों और अनिष्टों को परास्त किया जा सकता है । भगवान शंकर ने इसी तृतीय नेत्र को खोलकर कामदेव को परास्त किया था । दमयन्ती ने इसी को खोल कर व्याघ को भस्म किया था । यह आज्ञाचक्र में सन्निहित शाप क्षमता का परिचय है । दूसरी व्याख्या यह है कि तृतीय नेत्र—आज्ञा चक्र के जागरण से उस विवेकशीलता का विकास होता है जो कषाय—कल्मषों की हानियों को स्पष्ट रूप से दिखा सके । सामान्य मनुष्य प्रत्यक्ष लाभ के लिए ही भविष्य को नष्ट करते रहते हैं, पर जागृत विवेक सदा दूरगामी परिणामों को ही देखता है और तदनुरूप वर्तमान की गतिविधियों का निर्धारण करता है । इसी रीति—नीति के सहारे सामान्य मनुष्यों को असामान्य एवं महामानव बनने का अवसर मिलता है । शाम्भवी की उपासना में तीसरा ज्ञान—चक्षु खुलता है और उसी से अर्जुन की तरह आत्म दर्शन, ब्रह्म दर्शन का लाभ मिलता है । वह सूझ पड़ता है, जो सामान्य लोगों की कल्पना एवं प्रकृति से सर्वथा बाहर होता है ।

५–वेदमाता :

गायत्री को वेदमाता इसलिए कहा गया है कि चौबीस अक्षरों की व्याख्या के लिए चारों वेद बने । ब्रह्माजी को आकाशवाणी द्वारा गायत्री मंत्र की ब्रह्म दीक्षा मिली । उन्हें अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए सामर्थ्य, ज्ञान, और विज्ञान की शक्ति और साधनों की आवश्यकता पड़ी । इसके लिए अभीष्ट क्षमता प्राप्त करने के लिए उन्होंने गायत्री का तप किया । तप–बल से सृष्टि बनाई । सृष्टि के सम्पर्क, उपयोग एवं रहस्य से लाभान्वित होने की एक सुनियोजित विधि–व्यवस्था बनाई । उसका नाम वेद रखा । वेद की संरचना की मनःस्थिति और परिस्थिति उत्पन्न करना गायत्री महाशक्ति के सहारे ही उपलब्ध हो सका । इसलिए उस आद्यशक्ति का नाम 'वेदमाता' रखा गया ।

वेद सुविस्तृत हैं । उसे जन साधारण के लिए समझने योग्य बनाने के लिए और भी अधिक विस्तार की आवश्यकता पड़ी । पुराण–कथा के अनुसार ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से गायत्री के चार चरणों की व्याख्या करके चार वेद बनाये ।

'ॐ भूर्भुवः स्वः' के शीर्ष भाग की व्याख्या से 'ऋग्वेद' बना । 'तत्सवितुर्वरेण्यं' का रहस्योद्घाटन यजुर्वेद में है । 'भर्गो देवस्य धीमहि' का तत्त्वज्ञान विमर्श 'सामवेद' में है । 'धियो योनः प्रचोदयात्' की प्रेरणाओं और शक्तियों का रहस्य 'अथर्ववेद' में भरा पड़ा है ।

विशालकाय वृक्ष की सारी सत्ता छोटे से बीज में सन्निहित रहती है । परिपूर्ण मनुष्य की समग्र सत्ता छोटे से शुक्राणु में समाविष्ट देखी जा सकती है । विशालकाय सौरमण्डल के समस्त तत्त्व और क्रियाकलाप परमाणु के नगण्य से घटक में भरे पड़े हैं । ठीक इसी प्रकार संसार में फैले पड़े सुविस्तृत ज्ञान–विज्ञान का समस्त परिकर वेदों में विद्यमान है और उन वेदों का सारतत्व गायत्री मंत्र में सार रूप में भरा हुआ है । इसलिए गायत्री को ज्ञान–विज्ञान के अधिष्ठाता वेद वाङ्गमय की जन्मदात्री कहा जाता है । शास्त्रों में असंख्य स्थानों पर उसे 'वेदमाता' कहा गया है ।

गायत्री मन्त्र का अवगाहन करने से वह ब्रह्मज्ञान साधक को

सरलतापूर्वक उपलब्ध होता है, जिसको हृदयंगम कराने के लिए वेद की संरचना हुई है । गायत्री का माहात्म्य वर्णन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है–'गायत्री विद्या का आश्रय लेने वाला वेदज्ञान का फल प्राप्त करता है । गायत्री के अन्तःकरण में वे स्फुरणाएँ अनायास ही उठती हैं, जिनके लिए वेद विद्या का पारायण किया जाता है ।

वेद ज्ञान और विज्ञान दोनों के भण्डार हैं । ऋचाओं के प्रेरणाप्रद अर्थ भी हैं और उनके शब्द गुच्छकों में रहस्यमय शक्ति के अदृश्य भण्डार भी । वेद में विज्ञान भी भरा पड़ा है । स्वर–शास्त्र के अनुसार इन ऋचाओं का निर्धारित स्वर–विज्ञान के अनुसार पाठ, उच्चारण करने से साधक के अन्तराल का स्तर इतना ऊँचा उठ जाता है कि उस पर दिव्य प्रेरणा उतर सके । उसके व्यक्तित्व में ऐसा ओजस्, तेजस् एवं वर्चस् प्रकट होता है, जिसके सहारे महान कार्य कर सकने योग्य शौर्य, साहस का परिचय दे सके । वातावरण में उपयुक्त प्रवाह परिवर्तन संभव कर सकने के रहस्य वेद मन्त्रों में विद्यमान हैं । मंत्रों के प्रचण्ड प्रवाह का वर्णन शास्त्रों में मिलता है । इस रहस्यमय प्रक्रिया को वेदमाता की परिधि में सम्मिलित समझा जाना चाहिए ।

वेदज्ञान, दूरदर्शी दिव्य दृष्टि को कहते हैं । इसे अपनाने वाले का मस्तिष्क निश्चित रूप से उज्ज्वल होता है । चार वेद चार मंडल मात्र नहीं हैं । उस ज्ञान का विस्तार करने के कारण ब्रह्माजी के चार मुख हुए । उनकी वैखरी, मध्यमा, परा, पश्यन्ति–चारों वाणी समस्त विश्व को दिशा देने में समर्थ हुईं । गायत्री का अवगाहन करने वाले चारों ऋषि–सनक, सनन्दन, सनातन, सनत् कुमार वेद भगवान के प्रत्यक्ष अवतार कहलाये । चार वर्ण, चार आश्रम की परम्परा वेदों की आचार पद्धति है । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अन्तःकरण चतुष्टय, जिसे पाकर कृतकृत्य बनता है, वह वेदज्ञान है–कामधेनु के चार थन–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की चारों विभूतियों का पयपान करते हैं । साधना चतुष्टय में प्रवृत्ति वेदमाता की चतुर्विधि दिव्य प्रेरणा ही समझी जा सकती है । वेदमाता की साधना साधक को चार वेदों का अवलंबन प्रदान करती और उसे सच्चे अर्थों में वेदवेत्ता 'ब्रह्मज्ञानी बनाती है–तत्वज्ञान, सद्ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न करती है ।

६–देवमाता :

गायत्री का नाम 'देवमाता' भी है । देवमाता इसलिए कि उसकी गोद में बैठने वाला, पयपान करने वाला, आँचल पकड़ने वाला अपने देवत्व को बढ़ाता है और आत्मोत्सर्ग के क्षेत्र में क्रमिक विकास करते हुए इसी धरती पर विचरण करने वाले देव–मानवों की पंक्ति में जा खड़ा होता है ।

गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों में जो शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं वे सभी ऐसी हैं कि उनका चिन्तन–मनन करने वाले की चेतना में अभिनव जागृति उत्पन्न होती है और अन्तःकरण यह स्वीकार करता है कि मानव जीवन की सार्थकता एवं सफलता देवत्व की सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने में है । अज्ञानान्धकार में भटकने वाले मोह–ममता की सड़ी कीचड़ में फँसे रहते हैं और रोते–कलपते जिन्दगी के दिन पूरे करते हैं किन्तु गायत्री का आलोक अन्तराल में पहुँचते ही व्यक्ति सुषुप्ति से विरत होकर जागृति में प्रवेश करता है । स्वार्थ को संयत करके परमार्थ प्रयोजनों में रस लेना और उस दिशा में बढ़ चलने के लिए साहस जुटाना–यही है मनुष्य शरीर में देवत्व का अवतरण, जो दैवी सम्पदा से जितनी मात्रा में सुसम्पन्न बनता है, वह उसी अनुपात से इसी जीवन में स्वर्गीय सुख शान्ति का अनुभव करता है । उसके व्यक्तित्व का स्तर समुन्नत भी रहता है और सुसंस्कृत भी । देवात्मा शब्द से ऐसे ही लोगों को सम्मानित किया जाता है और वे स्वयं ऊँचे उठते, आगे बढ़ते हैं और अपने साथ–साथ अनेकों को उठाते आगे बढ़ाते हैं । चन्दन वृक्ष की तरह उनके अस्तित्व से सारा वातावरण महकता है और सम्पर्क में आने वाले अन्य झाड़–झंखाड़ों को भी सुगन्धित होने का सौभाग्य मिलता है ।

गायत्री उपासना का प्रधान प्रतिफल देवत्व का सम्वर्धन है । साधक का अन्तरंग और बहिरंग देवोपम बनता चला जाता है । एक–एक करके दुष्प्रवृत्तियाँ छूटती हैं और प्रगति के हर कदम पर सत्प्रवृत्तियों की उपलब्धि होती है । गुण, कर्म, स्वभाव में गहराई तक घुसे हुए कषाय–कल्मष एक–एक करके स्वयं पतझड़ के पत्तों की तरह गिरते–झड़ते चले जाते हैं । उनके स्थान पर बसन्त के अभिनव पत्र–पल्लवों की तरह मानवोचित श्रेष्ठता बढ़ती चली जाती है ।

देवता देने वाले को कहते हैं । गायत्री उपासना सच्चे अर्थों में की जा सके तो देवत्व की मात्रा बढ़ेगी ही । देवता के दो गुण हैं व्यक्तित्व की दृष्टि से उत्कृष्ट और आचरण की दृष्टि से आदर्श । ऐसे लोग हर घड़ी अपने प्रत्यक्ष और परोक्ष अनुदानों से सतयुगी वातावरण उत्पन्न करते चले जाते हैं ।

देवता सदा युवा रहते हैं । मानसिक बुढ़ापा उन्हें कभी नहीं आता । प्रसन्नता उनके चेहरे पर छायी रहती है । संतोष की नींद सोते हैं आशा भरी उमंग में तैरते हैं । किन्हीं भी परिस्थितियों में उन्हें खिन्न, उद्विग्न, निराश एवं असंतुलित नहीं देखा जाता । ये विशेषतायें जिनमें हों उन्हें देव-मानव कहा जा सकता है । देवता स्वर्ग में रहते हैं । चिन्तन की उत्कृष्टता, विधेयक चिन्तन में उत्साह, आनन्द और संतोष के तीनों ही तत्व घुले हुए हैं । देवता आप्तकाम होते हैं । कल्पवृक्ष उनकी सभी कामनाओं को पूरा करता है । यह स्थिति उन सभी को प्राप्त हो सकती है जो निर्वाह के लिए जीवन-यापन की न्यूनतम आवश्यकता पूरी हो जाना भर पर्याप्त मानते हैं और अपनी महत्वाकांक्षाऐं सदुद्देश्य में नियोजित रखते हैं । वासना, तृष्णा और अहंता ही अतृप्त रहते हैं । सद्भावनाओं को चरितार्थ करने के तो हर क्षण अवसर ही अवसर हैं । देवत्व मनःस्थिति में उतरता है । फलतः परिस्थितियों को स्वर्गीय, सन्तोषजनक बनने में देर नहीं लगती । देवमाता गायत्री साधक को इसी उच्च भूमिका में घसीट ले जाती है ।

७-विश्वमाता :

गायत्री का एक नाम विश्वमाता है । माता को अपनी संतानें प्राणप्रिय होती हैं । सभी को एकता के सूत्र में बँधे और समग्ररूप से सुखी-समुन्नत देखना चाहती है । विश्वमाता गायत्री की प्रसन्नता भी इसी में है कि मनुष्य मिल-जुलकर रहें । क्षमता बरतें और आत्मीयता भरा सद्व्यवहार अपनाकर समग्र सुख शान्ति का वातावरण बनायें । मनुष्यों और अन्य प्राणियों के बीच भी सहृदयता भरा व्यवहार रहे ।

विश्व भर में सतयुगी वातावरण बनाये रहने में अतीत की सांस्कृतिक गरिमा एवं भावभरी सद्भावना ही निमित्त कारण थी । अगले दिनों विश्वमाता का वात्सल्य फिर सक्रिय होगा । वे अपनी विश्व वाटिका के

सभी घटकों को फिर से सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित एवं समुन्नत बनाने में प्रखरता भरी अवतार–भूमिका सम्पन्न करेंगी । प्रज्ञावतार के रूप में विश्व के नव–निर्माण का प्रस्तुत प्रयास उस महाशक्ति के वात्सल्य का सामयिक उभार समझा जा सकता है । अगले दिनों 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श सर्वमान्य होगा । एकता, समता और शुचिता के चार आदर्शों के अनुरूप व्यक्ति एवं समाज की रीति–नीति नये सिरे से गढ़ी जायेगी । एक भाषा, एक धर्म, एक राष्ट्र, एक संस्कृति का निर्माण, जाति, लिंग और धर्म के नाम पर बरती जाने वाली असमानता का उन्मूलन एवं एकता और समता के सिद्धान्त प्राचीनकाल की तरह अगले दिनों भी सर्वमान्य होंगे । शुचिता अर्थात् जीवन क्रम में सर्वतोमुखी शालीनता का समावेश, ममता अर्थात् आत्मीयता एंव सहकारिता भरा सामाजिक प्रचलन । प्राचीनकाल की तरह अगले दिनों भी ऐसी ही मनःस्थिति एवं परिस्थिति बनाने के लिए विश्वमाता की सनातन भूमिका इन दिनों विशेष रूप से सक्रिय हो रही है ।

मस्तिष्क पर शिखा के रूप में विवेक की ध्वजा फहराई जाती है । शरीर को कर्तव्य–बन्धनों से बाँधने के लिए कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है । यह दोनों ही गायत्री की प्रतीक प्रतिमा हैं ।

भगवान का विराट् रूप दर्शन अनेक भक्तों को अनेक बार अनेक रूपों में होता रहा है । विराट् ब्रह्म के तत्व दर्शन का व्यावहारिक रूप है–विश्व मानव, विश्व बन्धुत्व, विश्व परिवार, विश्व भावना, विश्व संवेदना । इससे व्यक्तिवाद मिटता है और समूहवाद उभरता है । यही प्रभु समर्पण है । संकीर्ण स्वार्थपरता के बन्धनों से मुक्त होकर विराट के साथ एकात्मता स्थापित कर लेना ही परम लक्ष्य माना गया है । आत्म–चिन्तन, ब्रह्म चिन्तन, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान आदि के साधनात्मक उपचार इसी निमित्त किये जाते हैं । जन–जीवन में इन आस्थाओं और परम्पराओं का समावेश ही व्यक्ति में देवत्व के उदय की मनःस्थिति और धरती पर सुख–शान्ति की स्वर्गीय परिस्थिति का कारण बनता है । विश्वमाता गायत्री की प्रवृत्ति प्रेरणा यही है ।

गायत्री महाशक्ति को विश्वमाता कहते हैं । उसके अंचल में बैठने वाले में पारिवारिक उदात्त भावना का विकास होता है । क्षुद्रता के

भव–बन्धनों से मुक्ति, संकीर्णता के नरक से निवृत्ति–यह दोनों ही अनुदान विश्वमाता की समीपता एवं अनुकम्पा के हैं, जिन्हें हर सच्चा साधक अपने में उमँगता बढ़ता देखता है ।

८–ऋतम्भरा :

गायत्री की एक धारा है–ऋतम्भरा । इसी को प्रज्ञा कहते हैं । जिस 'धी' तत्व की प्रेरणा के लिए सविता देवता से प्रार्थना की गई है, वह यह ऋतम्भरा प्रज्ञा है । इसका स्वरूप समझने और उपलब्ध करने का उपाय बताने के लिए सुविस्तृत ब्रह्म विज्ञान की संरचना हुई है । ब्रह्मविद्या का तत्व–दर्शन इसी ऋतम्भरा प्रज्ञा को विकसित करने के लिए है । जिससे अधिक पवित्र इस संसार में और कुछ नहीं है, वह भगवान कृष्ण के शब्दों में सद्ज्ञान ही है । इसकी उपलब्धि को ज्ञान चक्षु उन्मीलन ही कहा गया है । उन्हीं दिव्य नेत्रों से आत्म–दर्शन एवं तत्व–दर्शन का लाभ मिलता है । जिस आत्म साक्षात्कार, ब्रह्म–साक्षात्कार के लिए तत्वदर्शी प्रयत्नशील रहते हैं, उसकी उपलब्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा के अनुग्रह से ही संभव होती है ।

बुद्धि चातुर्य से सम्पत्ति संग्रह एवं लोक आकर्षण की उपलब्धियाँ सम्भव हो सकती हैं, किन्तु आत्मिक उपलब्धियों के लिए सद्भावना, सहृदयता, सज्जनता की भाव संवेदना चाहिए । इन्हीं का विवेक सम्मत दूरदर्शिता पूर्ण समन्वय जिस केन्द्र पर होता है, उसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं । यह जिसे जितनी मात्रा में उपलब्ध होती है, वह उसी अनुपात में सन्त, सज्जन, ऋषि, महर्षि, राजर्षि, देवर्षि बनता चला जाता है । लौकिक बुद्धि से सामाजिक सम्पदाएँ मिलती हैं । आत्मिक विभूतियों का उत्पादन अभिवर्धन तत्व दृष्टि से होता है । इसी तत्व दृष्टि को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं । जीवन को गौरवान्वित करने तथा पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाने में सारी भूमिका ऋतम्भरा प्रज्ञा को ही सम्पादित करनी पड़ती है ।

ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान ऋतम्भरा प्रज्ञा है । उसका उदय होते ही माया के समस्त बन्धन कट जाते हैं । अज्ञानान्धकार को मिटाने में जिस अरुणोदय की कामना की जाती है, यह सविता का आलोक ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में प्रभात कालीन ऊषा बनकर ही अपने अस्तित्व

का परिचय देता है । प्रज्ञा का अवतरण होने पर मनुष्य की आकांक्षाएँ, विचारधाराएँ एवं गतिविधियाँ मायाबद्ध जीवधारियों से सर्वथा भिन्न हो जाती हैं, वे वासना, तृष्णा की कीचड़ में सड़ते नहीं रहते, वरन् अपनी नीति को उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कर्तृत्व के साथ जोड़ते हैं ।

लोग क्या कहते हैं, क्या करते हैं, इससे वे तनिक भी प्रभावित नहीं होते । लोभ–मोह की मदिरा पीकर उन्मत्त हुए पथ भ्रष्टों के प्रति उन्हें करुणा बनी रहती है और उनके उद्धार की बात सोचते हैं, पर यह स्वीकार नहीं करते कि परामर्श को अंगीकार करें । ऋृतम्भरा प्रज्ञा के सहारे ही वे ऐसे साहसि निर्णय ले पाते हैं जो महोग्रस्त भव–बन्धनों से जकड़े हुए जन समाज की अपेक्षा सर्वथा भिन्न होते हैं । ईमान और सचाई के अतिरिक्त और किसी का परामर्श उन्हें प्रभावित नहीं करता । प्रज्ञा का इतना सुदृढ़ कवच पहिनने वाले ही जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं और इस धरती के देवता कहलाते हैं ।

दृष्टिकोण में उत्कृष्टता भर जाने पर पदार्थों की उपयोगिता और प्राणियों की सदाशयता का दर्शन होने लगता है । तदनुरूप अपना व्यवहार बदलना और निष्कर्ष निकलना आरम्भ हो जाता है । चिन्तन की इसी प्रक्रिया का नाम स्वर्ग है । वासना, तृष्णा और अंहता के बन्धन ही मनुष्य को विक्षुब्ध बनाये रहते हैं । जब इन्हें हटा कर निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा की मनोभूमि बनती है तो तुष्टि, तृप्ति और शान्ति की कमी नहीं रहती । प्रलोभनों से छुटकारा और आदर्शों का परिपालन–यही जीवन मुक्ति है । आत्म साक्षात्कार ब्रह्म–साक्षात्कार की सच्चिदानन्द स्थिति इसी स्तर पर पहुँचने वाले को मिलती है ।

गायत्री उपासना से ऋृतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है, अथवा ऋृतम्भरा प्रज्ञा का अनुशीलन करने वाले गायत्री का साक्षात्कार करते हैं ? इस विवाद में न पड़कर हमें इतना ही चाहिए कि दोनों अन्योन्याश्रित हैं । जहाँ एक होगी वहाँ दूसरी का रहना भी आवश्यक है । गायत्री का सच्चा अनुग्रह जिस पर उतरता है, उसमें ऋृतम्भरा प्रज्ञा का–ब्रह्म तेजस का आलोक प्रत्यक्ष जगमगाने लगता है । सामान्य लोगों की तुलना में वह उत्कृष्टता की दृष्टि से ऊँचा उठा हुआ और आगे बढ़ा हुआ दृष्टिगोचर होता है ।

९—मन्दाकिनी

दृश्यमान गंगा और अदृश्य गायत्री की समता मानी जाती है । गायत्री की एक शक्ति का नाम मन्दाकिनी भी है । गंगा पवित्रता प्रदान करती है, पापकर्मों से छुटकारा दिलाती है । गायत्री से अन्तःकरण पवित्र होता है, कषाय–कल्मषों के संस्कारों से त्राण मिलता है । गंगा और गायत्री दोनों की ही जन्म–जयन्ती एक है–ज्येष्ठ शुक्ला दशमी । दोनों को ही एक ही तथ्य का स्थूल एवं सूक्ष्म प्रतीक माना जाता है ।

गंगा का अवतरण भगीरथ के तप से संभ्भव हुआ । गायत्री के अवतरण में वही प्रयत्न ब्रह्मा जी को करना पड़ा । मनुष्य जीवन में गायत्री की दिव्यधारा का अनुग्रह उतरने के लिए तपस्वी–जीवन बिताने की, तपश्चर्या सहित साधना करने की आवश्यकता पड़ती है । गायत्री के दृष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं । उन्होंने भी तपश्चर्या के माध्यम से इस गौरवास्पद पद को पाया था । विश्वामित्र ने गायत्री महाशक्ति का अपना उपार्जन राम–लक्ष्मण को हस्तान्तरित किया था–बला और अतिबला विद्याओं को सिखाया था । इसी से वे इतने महान पुरुषार्थ करने में समर्थ हुए । बला और अतिबला गायत्री सावित्री के ही नाम हैं ।

गंगा शरीर को पवित्र करती है, गायत्री आत्मा को । गंगा मृतक को तारती है, गायत्री जीवितों को, गंगास्नान से पाप धुलते हैं, गायत्री से पाप वृत्तियाँ भी निर्मूल होती हैं । गायत्री उपासना के लिए गंगा तट की अधिक महत्ता बतलाई गई है । दोनों का समन्वय गंगा–यमुना के संगम की तरह अधिक प्रभावोत्पादक बनता है । सप्त ऋषियों ने गायत्री साधना द्वारा परम सिद्धि पाने के लिए उपयुक्त स्थान गंगा–तट ही चुना था और वहीं दीर्घकालीन तपश्चर्या की थी । गायत्री के एक हाथ में जल से भरा कमण्डलु है, यह अमृत–जल–गंगाजल ही है । उच्चस्तरीय गायत्री साधना करने वाले प्रायः गंगा–स्नान, जलपान–गंगातट का सान्निध्य, जैसे सुयोग तलाश करते हैं ।

भक्ति–गाथा में रैदास की कठौती में गंगा के उमगने की कथा आती है । अनुसूया ने चित्रकूट के निकट तप करके मन्दाकिनी को धरती पर उतारा था । गायत्री उपासना से साधक का अन्तःकरण गंगोत्री–गोमुख

जैसा बन जाता है और उसमें से प्रज्ञा की निर्झरिणी प्रवाहित होने लगती है ।

गायत्री की अनेक धाराओं में एक मन्दाकिनी है । उसका अवगाहन पापों के प्रायश्चित एवं पवित्रता संवर्धन के लिए किया जाता है ।

१०–अजपा :

गायत्री साधना की एक स्थिति ऐसी भी है, जिसमें आत्मा का परमात्मा के साथ आदान–प्रदान का सिलसिला स्वयंमेव चल पड़ता है और इस दिव्य मिलन के फलस्वरूप मिलने वाली उपलब्धियों का लाभ मिलने लगता है । उस स्थिति को अजपा कहते हैं ।

'अजपा' गायत्री का साधनात्मक स्वरूप 'सोऽहम् साधना' इसे हंस योग भी कहते हैं । गायत्री का वाहन हंस है । यह हंस 'सोहम्' साधना के माध्यम से साधा जाने वाला हंस योग ही है । गायत्री शब्द का अर्थ है–प्राण का त्राण करने वाली । 'गय' प्राण को और 'त्री' त्राण करने वाले को कहते हैं । प्राणतत्व का विशिष्ट अवतरण प्राणायाम के माध्यम से होता है । गायत्री–साधना में चौबीस प्राणायामों का विधान है । इन सबमें 'सोऽहम्' साधना को प्रधानता मिली है । यह अत्यन्त उच्चस्तरीय रक्त संचालित प्राणायाम ही है । सामान्य प्राणायामों में इच्छा शक्ति, एवं शारीरिक गतिविधियों का उपयोग होता है । सोऽहम् साधना में यह सारा काम आत्मा स्वयं कर लेती है । शरीर और मन के सहयोग की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती ।

श्वांस जब शरीर में प्रवेश करता है, तब 'सो' की सूक्ष्म ध्वनि होती है । जब श्वांस बाहर निकलता है तो 'हम' की शब्दानुभूति होती है । ये ध्वनियाँ बहुत ही सूक्ष्म हैं । स्थूल कर्णेन्द्रियाँ उन्हें नहीं सुन सकतीं । शब्द की तन्मात्रा तक पहुँचने वाली ध्यान धारणा में ही उसकी अनुभूति होती है । शान्त चित्त से एकाग्रता पूर्वक श्वांस के भीतर जाते समय 'स' को और बाहर निकलते समय 'हम' के शब्द प्रवाह को धारण करने पर कुछ समय बाद यह दिव्य ध्वनि अनायास ही अनुभव में आने लगती है । कृष्ण के वेणुनाद सुनने से जैसा आनन्द गोपियों को मिलता था वैसी ही दिव्य अनुभूति इन्द्रियों को, उपत्यिकाओं को इस 'सोऽहम्' ध्वनि प्रवाह को सुनने से होती है ।

शब्द ब्रह्म–नाद ब्रह्म का उल्लेख शास्त्रों में होता है । मोटी विवेचना में सत्संग प्रवचन को 'शब्द' और 'भक्ति' भरे भाव संगीत को 'नाद' ब्रह्म कहते हैं, पर दिव्य भूमिका में ये दोनों ही शब्द 'सोऽहम्' साधना के लिए प्रयुक्त होते हैं । तपस्वी इसी को 'अनाहत ध्वनि' कहते हैं ।

गायत्री का मूल उद्गम 'ॐकार' है । उसी का विस्तार गायत्री के चौबीस अक्षरों में हुआ है । इसी प्रकार नादब्रह्म का बीज 'सोऽहम्' है, उसी का विस्तार 'नादयोग' के साधनों में सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय द्वारा घण्टा–घड़ियाल, मेघगर्जन, वंशी, मृदंग, कलरव आदि की अनेकानेक ध्वनियों में अनुभव होता है । यह दिव्य ध्वनियाँ प्रकृति के सूक्ष्म अन्तराल से उठती हैं और उनके सुनने की क्षमता उत्पन्न हो जाने पर उनके पीछे छिपे वे रहस्य प्रकट होने लगते हैं, जो विश्व की अविज्ञात गतिविधियों की जानकारी देकर साधक को सूक्ष्मदर्शी बना देती हैं ।

सामान्य साधनाएँ शरीर और मन की सहायता से प्रयत्नपूर्वक करनी पड़ती हैं, पर 'अजपा–गायत्री' का आत्मा के साथ सीधा सम्बन्ध जुड़ जाने से साधना क्रम स्वसंचालित हो जाता है और अपनी धुरी पर स्वयमेव घूमने लगता है । अजपा साधना भी है और शक्ति भी । सोऽहम् के ध्यान, अभ्यास को साधना कहते हैं । उसका आत्मा के साथ सीधा सम्बन्ध जुड़ जाने और गतिचक्र के स्वयमेव घूमने लगने की स्थिति में वही एक शक्ति बन जाती है । इस शक्ति के सहारे साधक आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है । उसका उपयोग आत्मकल्याण और विश्व–कल्याण के लिए महत्वपूर्ण क्षमताएँ सम्पादित करने में भी होता है ।

अजपा में सन्निहित हंसयोग को ध्यान में रखते हुए गायत्री का वाहन हंस बताया गया है । जो इसे साधता है उसका अन्तरंग नीर–क्षीर विवेक की क्षमता सम्पन्न दिव्यदर्शी बनता है । उसका बहिरंग मोती चुगने कीड़े न खाने जैसा आदर्शवादी हो जाता है । ऐसे ही चिन्तन में उत्कृष्टता और कर्तृत्व में आदर्शवादिता अपनाने वाले को राजहंस कहते हैं । ऊँचा उठने पर वे ही परमहंस बन जाते हैं । इस उच्चस्तरीय भूमिका तक पहुँचने में गायत्री की अजपा शक्ति का अनुग्रह असाधारण रहता है ।

११–ऋद्धि, १२–सिद्धि :

गायत्री महाशक्ति की गरिमा महत्ता एवं प्रतिक्रिया क्या हो सकती है, इसका उत्तर विभिन्न देवताओं के स्वरूप, वाहन, आयुध, स्वभाव आदि पर दृष्टि डालने से मिल जाता है । देवता और देवियों को गायत्री महाशक्ति के विशिष्ट प्रवाह ही समझा जा सकता है ।

गायत्री के चौबीस देवताओं में एक गणेश है । गणेश अर्थात् विवेक बुद्धि के देवता । जहाँ दूरदर्शी विवेक का बाहुल्य दिखाई पड़े, समझना चाहिए कि वहाँ गणेश की उपस्थिति और अनुकम्पा प्रत्यक्ष है । सद्ज्ञान ही गणेश है । गायत्री मन्त्र की मूल धारणा सद्ज्ञान ही है । अस्तु, प्रकारान्तर से गणेश को गायत्री की प्रमुख शक्ति धारा कहा जा सकता है ।

गणेश के साथ दो दिव्य सहेली–सहचरी हैं । एक का नाम ऋद्धि और दूसरी का सिद्धि है । ऋद्धि अर्थात् आत्मिक विभूतियाँ । सिद्धि अर्थात् सांसारिक सफलताएँ । विवेक की ये दो उपलब्धियाँ सहज स्वाभाविक हैं । ब्रह्म के साथ जिस प्रकार गायत्री, सावित्री को दो सहचरी माना गया है, उसी प्रकार गणेश के साथ भी ऋद्धि–सिद्धि हैं । ऋद्धि आत्मबल और सिद्धि समृद्धि बल है । परब्रह्म की दो सहेलियाँ परा और अपरा प्रकृति हैं, उन्हीं के सहारे जड़–चेतन विश्व का गतिचक्र घूमता है । विवेक रूपी गणेश का स्वरूप निर्माण करते समय तत्वदर्शियों ने उसकी दो सहेलियों का भी चित्रण किया है । आत्मबल और भौतिक सफलताओं का सारा क्षेत्र विवेक पर आधारित है । इसी तथ्य को गणेश और उनकी सहचरी को ऋद्धि–सिद्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

ऋद्धि अर्थात् आत्मज्ञान–आत्मबल, आत्म–संतोष, अन्तरंग उल्लास, आत्म–विस्तार, समृद्धि, विद्या, समर्थता, सहयोग सम्पादन एवं वैभव । लगभग यही विशेषताएँ गायत्री और सावित्री की हैं । दोनों एक साथ जुड़ी हुई हैं । जहाँ ऋद्धि है वहाँ सिद्धि भी रहेगी । गणेश पर दोनों को चँवर डुलाना पड़ता है । विवेकवान आत्मिक और भौतिक दोनों दृष्टियों से सुसम्पन्न होते हैं । संक्षेप में गणेश के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई ऋद्धि–सिद्धियों के चित्रण का यही तात्पर्य है ।

गणेश के एक हाथ में अंकुश, दूसरे में मोदक हैं । अंकुश अर्थात् अनुशासन, मोदक अर्थात् सुख–साधन । जो अनुशासन साधते हैं वे अभीष्ट साधन भी जुटा लेते हैं । गणेश से सम्बद्ध इन–दो उपकरणों का यही संकेत है । ऋद्धि अर्थात्–आत्मिक उत्कृष्टता । सिद्धि अर्थात्–भौतिक समर्थता । मर्यादाओं का अंकुश मानने वाले संयम साधने वाले, हर दृष्टि से समर्थ बनते हैं । उन्हें सुख–साधनों की, सुविधा सम्पन्नता की कमी नहीं रहती । उत्कृष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति सदा मुदित रहते हैं–प्रसन्नता बाँटते, बखेरते देखे जाते हैं । यही मोदक हैं जिससे हर घड़ी संतोष, आनन्द का रसास्वादन मिलता है । विवेकवान का चुम्बकीय व्यक्तित्व दृश्य और अदृश्य जगत से वे सब उपलब्धियाँ खींच लेता है, जो उसकी प्रगति एवं प्रसन्नता के लिए आवश्यक हैं ।

ऋद्धि–सिद्धियों के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह है कि यह कोई जादुई चमत्कार दिखाने में काम आने वाली विशेषताएँ हैं । आकाश में उड़ना, पानी पर चलना, अदृश्य हो जाना, रूप बदल लेना, कहीं से कुछ वस्तुएँ मँगा देना या उड़ा देना, भविष्य–कथन जैसी आश्चर्यजनक बातों को सिद्धि कहा जाता है । यह जादुई खेल–मेल है जो हाथ की सफाई चालाकी या हिप्नोटिज्म जैसे उथले भावात्मक प्रयोगों से भी सम्पन्न किए जा सकते हैं । उन्हें दिखाने का उद्देश्य प्रायः लोगों को चमत्कृत करके उन्हें अपने चंगुल में फँसा लेना एवं अनुचित लाभ उठाना ही होता है । इसलिए ऐसे प्रदर्शनों की साधना शास्त्रों में पग–पग पर मनाही की गई है । उनमें विशेषताएँ हों भी तो उन्हें प्रदर्शन से रोका गया है । फिर जो हाथ की सफाई के चमत्कार दिखाते और उसकी संगति अध्यात्म सामर्थ्य से जोड़ते हैं उन्हें तो हर दृष्टि से निन्दनीय कहा जा सकता है ।

वास्तविक ऋद्धि यही है कि साधक अपने उत्कृष्ट व्यक्तित्व के सहारे आत्म–संतोष, लोक–श्रद्धा एवं दैवी अनुकम्पा के विविध लाभ पाकर मनुष्यों के बीच देवताओं जैसी महानता प्रस्तुत करे और अपनी आदर्शवादी साहसिकता से जन–जन को प्रभावित करे । वास्तविक सिद्धि यह है कि उपार्जन तो पर्वत जितना करे पर अपने लिए औसत नागरिक जितना निर्वाह लेकर शेष को सत्प्रयोजनों के लिए उदारतापूर्वक समर्पित कर दे । ऐसे अनुकरणीय, आदर्श उपस्थित कर सकना उच्च स्तर का

चमत्कार ही है । जो इस मार्ग पर जितना आगे बढ़ सके उसे उतना ही बड़ा सिद्ध पुरुष कहा जा सकता है ।

गायत्री का एक नाम ऋद्धि है, दूसरा सिद्धि । प्रयत्नपूर्वक सत्प्रवृत्तियों को अपनाने वाले इन दोनों को ही उपलब्ध करते और हर दृष्टि से धन्य बनते हैं । सच्ची गायत्री उपासना का प्रतिफल भी ऋद्धियों और सिद्धियों के रूप में सामने आता है । गायत्री प्रत्यक्ष सिद्धि है । जिसके अन्तराल पर वह उतरती है उसे ऋद्धि-सिद्धियों से, विभूतियों और समृद्धियों से भरा-पूरा सफल जीवन बनाने का अवसर देती है ।

१३-सावित्री

आदि शक्ति की दो धाराएँ हैं-(१) आत्मिकी (२) भौतिकी । आत्मिकी को गायत्री और भौतिकी को सावित्री कहते हैं । गायत्री एक मुख है, उसे एकात्मवाद, अद्वैतवाद, आत्मवाद कह सकते हैं । सावित्री पंचमुखी है । शरीर पाँच तत्वों से बना है । उनकी इन्द्रियानुभूति पाँच तन मात्राओं के सहारे शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के रूप में होती हैं । चेतना का स्पन्दन पाँच प्राणों के सहारे चलता है । पाँच तत्व और पाँच प्राण मिलकर जिस जीव-सत्ता को चलाते हैं उनकी अधिष्ठात्री सावित्री हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ इसी जीवन चर्या का चक्र आगे घसीटती हैं ।

सूक्ष्म शरीर का सारा ढाँचा कोशों की सामग्री से बना है । विज्ञान की भाषा में उन्हें फिजिकल बॉडी, एस्ट्रल बॉडी, मेन्टल बॉडी, काजल बॉडी और कास्मिक बॉडी कहते हैं । अध्यात्म की भाषा में इन्हें अन्नमय कोष, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश कहा जाता है । ये पाँच बहुमूल्य खजाने काय-सत्ता के अन्तराल में विद्यमान हैं । उनमें सिद्धियों के और विभूतियों के भण्डार भरे पड़े हैं । काय-कलेवर में विद्यमान इन्हीं को देवता कहा गया है । ये जब तक प्रसुप्त स्थिति में रहते हैं तभी तक मनुष्य दीन-दुर्बल रहता है । जब वे जागृत होते हैं तो पाँच देवता मनुष्य की विविध-विध सहायता करते देखे जाते हैं । दक्षिणमार्गी साधना में गायत्री को और वाम मार्गी साधना में सावित्री को प्रमुख माना जाता है । सकाम साधनाएँ

सावित्री परक होती हैं, उनमें प्रयोजनों के अनुरूप बीजमंत्र लगाये जाते हैं । गायत्री का प्रयोग आत्मोत्कर्ष के लिए होता है । उसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को समुन्नत बनाने वाले भूः, र्भुवः, स्वः के तीन बीजमंत्र पहले से ही लगे हुए हैं । ब्रह्म–वर्चस् साधना में इन तीनों का संतुलित समन्वय है ।

पंचमुखी सावित्री के ज्ञान पक्ष में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले पंचशीलों के परिपालन का संकेत है । सामान्य जीवन में श्रमशीलता, मितव्ययता, सहकारिता और सज्जनता की गतिविधियाँ पंचशील कहलाती हैं । विभिन्न वर्गों के लिए, विभिन्न प्रयोजनों के लिए पंचशील पृथक–पृथक हैं, जिनके परिपालन से अभीष्ट क्षेत्र की स्थूलताओं के द्वार सहज ही खुलते चले जाते हैं । पंचशील ही पंचदेव हैं ।

गायत्री की असंख्य दिव्य धाराओं में सबसे निकटवर्ती और अधिक समर्थ सावित्री है । दोनों इतनी सघन हैं कि दोनों को प्रायः एक ही माना जाता है । वस्तुतः दोनों को शरीर और आत्मा की तरह भौतिकी और आत्मिकी माना जाना चाहिए और आवश्यकतानुसार अभीष्ट उद्देश्यों के लिए उनका अंचल पकड़ना चाहिए ।

१४–सरस्वती :

ज्ञान–चेतना के दो पक्ष हैं । एक प्रज्ञा–आत्मिक समाधान एवं उत्कर्ष का पथ प्रशस्त करती हैं । बुद्धि को लोक व्यवहार एवं निर्वाह की गुत्थियाँ सुलझाने एवं उपलब्धियाँ पाने के लिए प्रयोग किया जाता है । बुद्धि का स्वरूप मस्तिष्क है और प्रज्ञा का अन्तःकरण है । प्रज्ञा की अधिष्ठात्री गायत्री है और बुद्धि की संचारिणी सरस्वती । आवश्यकतानुसार दोनों में से जिसका आश्रय लिया जाता है उसी का प्रतिफल प्राप्त होता है ।

सरस्वती को साहित्य, संगीत कला की देवी माना जाता है । उसमें विचारणा भावना एवं संवेदना का त्रिविध समन्वय है । वीणा संगीत की, पुस्तक विचारणा की और मयूर वाहन कला की अभिव्यक्ति है ।

लोकचर्या में सरस्वती को शिक्षा की देवी माना गया है । शिक्षा संस्थाओं में वसन्त पंचमी को सरस्वती का जन्मदिन समारोह पूर्वक मनाया

जाता है । पशु को मनुष्य बनाने का, अन्धे को नेत्र मिलने का श्रेय शिक्षा को दिया जाता है । मनन से मनुष्य बनता है । मनन बुद्धि का विषय है । भौतिक प्रगति का श्रेय बुद्धि वर्चस् को दिया जाना और उसे सरस्वती का अनुग्रह माना जाना उचित भी है । इस उपलब्धि के बिना मनुष्य को नर-वानरों की तरह वनमानुष जैसा जीवन बिताना पड़ता है । शिक्षा की गरिमा-बौद्धिक विकाश की आवश्यकता जन-जन को समझाने के लिए सरस्वती पूजा की परम्परा है । इसे प्रकारान्तर से गायत्री महाशक्ति के अन्तर्गत बुद्धि पक्ष की आराधना कहना चाहिए ।

कहते हैं कि महाकवि कालिदास, वरदराजाचार्य वोपदेव आदि मंद-बुद्धि के लोग सरस्वती उपासना के सहारे उच्चकोटि के विद्वान बने थे । इसका सामान्य तात्पर्य तो इतना ही है कि वे लोग अधिक मनोयोग एवं उत्साह के साथ अध्ययन में रुचिपूर्वक संलग्न हो गये, वे अनुत्साह की मनःस्थिति में प्रसुप्त पड़े रहने वाली मस्तिष्क क्षमता को विकसित कर सकने में सफल हुए होंगे । इसका एक रहस्य यह भी हो सकता है कि कारणवश दुर्बलता की स्थिति में रह रहे बुद्धि-संस्थान को सजग सक्षम बनाने के लिए वे उपाय-उपचार किए गये जिन्हें 'सरस्वती आराधना' कहा जाता है । उपासना की प्रक्रिया भाव-विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है । श्रद्धा और तन्मयता के समन्वय से की जाने वाली साधना प्रक्रिया एक विशिष्ट शक्ति है । मनश्शास्त्र के रहस्यों को जानने वाले स्वीकार करते हैं कि व्यायाम, अध्ययन, कला, अभ्यास की साधना भी एक समर्थ प्रक्रिया है, जो चेतना-क्षेत्र की अनेकानेक रहस्यमयी क्षमताओं को उभारने तथा बढ़ाने में पूर्णतया समर्थ है । सरस्वती उपासना के सम्बन्ध में भी यही बात है । उसे शास्त्रीय विधि से किया जाय तो वह अन्य मानसिक उपचारों की तुलना में बौद्धिक क्षमता विकसित करने में कम नहीं अधिक ही सफल होती है ।

मन्दबुद्धि लोगों के लिए गायत्री महाशक्ति का सरस्वती तत्व अधिक हितकर सिद्ध होता है । बौद्धिक क्षमता विकसित करने, चित्त की चंचलता एवं अस्वस्थता दूर करने के लिए सरस्वती साधना की विशेष उपयोगिता है । मस्तिष्क-तन्त्र से सम्बन्धित अनिद्रा, सिरदर्द, तनाव, जुकाम, जैसे रोगों में गायत्री के इस अंश सरस्वती साधना का लाभ मिलता है ।

कल्पना शक्ति की कमी, समय पर उचित निर्णय न कर सकना, विस्मृति, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, अरुचि जैसे कारणों से भी मनुष्य मानसिक दृष्टि से अपंग असमर्थ जैसा बना रहता है और मूर्ख कहलाता है । उस अभाव को दूर करने के लिए सरस्वती साधना एक उपयोगी आध्यात्मिक उपचार है ।

शिक्षा के प्रति जन–जन के मन–मन में अधिक उत्साह भरने–लौकिक अध्ययन और आत्मिक स्वाध्याय की उपयोगिता अधिक गम्भीरतापूर्वक समझने के लिए भी सरस्वती पूजन की परम्परा है । बुद्धिमत्ता को बहुमूल्य सम्पदा समझा जाय और उसके लिए धन कमाने, बल बढ़ाने, साधन जुटाने, मोद मनाने से भी अधिक ध्यान दिया जाय । इस लोकोपयोगी प्रेरणा को गायत्री महाशक्ति के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण धारा सरस्वती की मानी गई है और उससे लाभान्वित होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है ।

१५–लक्ष्मी :

गायत्री की एक धारा श्री है । श्री अर्थात् लक्ष्मी, लक्ष्मी अर्थात् समृद्धि । गायत्री की कृपा से मिलने वाले वरदानों में एक लक्ष्मी भी है । जिस पर यह अनुग्रह उतरता है वह दरिद्र, दुर्बल, कृपण, असन्तुष्ट एवं पिछड़ेपन से ग्रसित नहीं रहता । स्वच्छता एवं सुव्यवस्था के स्वभाव को भी 'श्री' कहा गया है । वह सद्गुण जहाँ होंगे वहाँ दरिद्रता कुरूपता टिक नहीं सकेगी ।

पदार्थ को मनुष्य के लिए उपयोगी बनाने और उसकी अभीष्ट मात्रा उपलब्ध करने की क्षमता को लक्ष्मी कहते हैं । यों प्रचलन में तो लक्ष्मी शब्द सम्पत्ति के लिए प्रयुक्त होता है, पर वस्तुतः वह चेतना का एक गुण है, जिसके आधार पर निरुपयोगी वस्तुओं को भी उपयोगी बनाया जा सकता है । मात्रा में स्वल्प होते हुए भी उनका भरपूर लाभ सत्प्रयोजनों के लिए उठा लेना एक विशिष्ट कला है । वह जिसे आती है उसे लक्ष्मीवान, श्रीमान कहते हैं । शेष अमीर लोगों को धनवान भर कहा जाता है । गायत्री की एक किरण लक्ष्मी भी है । जो इसे प्राप्त करता है उसे स्वल्प साधनों में भी अर्थ उपयोग की कला आने के कारण सदा

सुसम्पन्नों जैसी प्रसन्नता बनी रहती है ।

धन का अधिक मात्रा में संग्रह होने मात्र से किसी को सौभाग्यशाली नहीं कहा जा सकता । सद्बुद्धि के अभाव में वह नशे का काम करती है, तो मनुष्य को अहंकारी, उद्धत, विलासी और दुर्व्यसनी बना देती है । सामान्यतया धन पाकर लोग कृपण, विलासी, अपव्ययी और अहंकारी हो जाते हैं । लक्ष्मी का एक वाहन उलूक माना गया है । उलूक अर्थात् मूर्खता । कुसंस्कारी व्यक्तियों को अनावश्यक सम्पत्ति मूर्ख ही बनाती है । उनसे दुरुपयोग ही बन पड़ता है और उसके फलस्वरूप वह आहत ही होती है ।

लक्ष्मी का अभिषेक दो हाथी करते हैं । वह कमल के आसन पर विराजमान है । कमल कोमलता का प्रतीक है । कोमलता और सुन्दरता सुव्यवस्था में ही सन्निहित रहती है । कला भी इसी सत्प्रवृत्ति को कहते हैं । लक्ष्मी का एक नाम कमल भी है । इसी को संक्षेप में कला कहते हैं । वस्तुओं को, सम्पदाओं को सुनियोजित रीति से सदुद्देश्य के लिए सदुपयोग करना, उसे परिश्रम एवं मनोयोग के साथ नीति और न्याय की मर्यादा में रहकर उपार्जित करना भी अर्थकला के अन्तर्गत आता है । उपार्जन अभिवर्धन में कुशल होना श्री तत्व के अनुग्रह का पूर्वार्द्ध है । उत्तरार्द्ध वह है जिसमें एक पाई का भी अपव्यय नहीं किया जाता । एक-एक पैसे को सदुद्देश्य के लिए ही खर्च किया जाता है ।

लक्ष्मी का जल-अभिषेक करने वाले दो गजराजों को परिश्रम और मनोयोग कहते हैं । उनका लक्ष्मी के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है । यह युग्म जहाँ भी रहेगा, वहाँ वैभव की, श्रेय-सहयोग की कमी रहेगी ही नहीं । प्रतिभा के धनी पर सम्पन्नता और सफलता की वर्षा होती है और उन्हें उत्कर्ष के अवसर पग-पग पर उपलब्ध होते हैं ।

गायत्री के तत्व दर्शन एवं साधना क्रम की एक धारा लक्ष्मी है । इसका शिक्षण यह है कि अपने में कुशलता की, क्षमता की अभिवृद्धि की जाय तो कहीं भी रहो लक्ष्मी के अनुग्रह और अनुदान की कमी नहीं रहेगी । उसके अतिरिक्त गायत्री उपासना की एक धारा 'श्रीसाधना' है । उसके विधान अपनाने पर चेतना-केन्द्र में प्रसुप्त पड़ी हुई वे क्षमताएँ जागृत होती हैं जिनके चुम्बकत्व से खिंचता हुआ धन-वैभव उपयुक्त मात्रा

में सहज ही एकत्रित होता रहता है । एकत्रित होने पर बुद्धि की देवी सरस्वती उसे संचित नहीं रहने देती वरन् परमार्थ प्रयोजनों में उसके सदुपयोग की प्रेरणा देती है ।

लक्ष्मी प्रसन्नता की, उल्लास की, विनोद की देवी है । वह जहाँ रहेगी हँसने–हँसाने का वातावरण बना रहेगा । अस्वच्छता भी दरिद्रता है । सौन्दर्य, स्वच्छता एवं कलात्मक सज्जा का ही दूसरा नाम है । लक्ष्मी सौन्दर्य की देवी है । वह जहाँ रहेगी वहाँ स्वच्छता, प्रसन्नता, सुव्यवस्था, श्रमनिष्ठा एवं मितव्ययिता का वातावरण बना रहेगा ।

गायत्री की लक्ष्मी धारा का अवगाहन करने वाले श्रीवान बनते हैं और उसका आनन्द एकाकी न लेकर असंख्यों को लाभान्वित करते हैं ।

१६–दुर्गा

गायत्री की एक धारा दुर्गा है । दुर्गा को ही काली कहते हैं । काली को महाकाल की सहधर्मिणी माना गया है । महाकाल अर्थात् सुविस्तृत समय सौरभ । काल की महत्ता स्वीकार करने वाले, उसकी उपयोगिता समझने वाले, उसका सदुपयोग करने वाले काली के उपासक कहे जाते हैं ।

आलस्य में शरीर और प्रमाद में मन की क्षमता को नष्ट होनें से बचा लिया जाय तो सामान्य स्तर का मनुष्य भी अभीष्ट उद्देश्यों में चरम सफलता प्राप्त कर सकता है । समय ही ईश्वर प्रदत्त वह सम्पदा है जिसका उपयोग करके मनुष्य जिस प्रकार की भी सफलता प्राप्त करना चाहे उसे प्राप्त कर सकता है । ईश्वर सूक्ष्म है, उसका पुत्र जीव भी सूक्ष्म है । पिता से पुत्र को मनुष्य जन्म का महान अनुदान तो मिला ही है, साथ ही समय रूपी ऐसा अदृश्य धन भी मिला है जिसे यदि आलस्य–प्रमाद में बर्बाद न किया जाय, किसी प्रयोजन विशेष के लिए नियोजित रखा जाय तो उसके बदले में सांसारिक एवं आध्यात्मिक सम्पदाऐं प्रचुर परिमाण में उपलब्ध की जा सकती हैं । इस तथ्य को गायत्री काली विग्रह में स्पष्ट किया गया है ।

हर दिन व्यस्त योजना बनाकर चलना और उस प्रयास में प्राणपण से एकाग्र भाव से जुटे रहना इष्ट प्राप्ति का सुनियोजित आधार है ।

इसी रीति–नीति में गहन श्रद्धा उत्पन्न कर लेना महाकाल की उपासना है । इसी अवलम्बन को अपनाने से महामानवों की भूमिका का सम्पादित कर सकना संभव हो सकता है ।

काली के अन्यान्य नाम भी हैं । दुर्गा, चण्डी, अम्बा, शिवा, पार्वती आदि उसी को कहते हैं । इसका एक रूप संघ शक्ति भी है । एकाकीपन सदा अपूर्ण ही रहता है, भले ही वह कितना ही समर्थ, सुयोग्य एवं सम्पन्न हो । जिसे जितना सहयोग मिल जाता है, वह उसी क्रम से आगे बढ़ता है । संगठन की महिमा अपार है । व्यक्ति और समाज की सारी प्रगति, समृद्धि और शान्ति का आधार सामूहिकता एवं सहकारिता है । अब तक की मानवी उपलब्धियाँ सहकारी प्रकृति के कारण ही संभव हुई हैं । भविष्य में भी कुछ महत्वपूर्ण पाना हो तो उसे सम्मिलित उपायों से ही प्राप्त किया जा सकेगा ।

दुर्गा अवतार की कथा है कि असुरों द्वारा संत्रस्त देवताओं का उद्धार करने के लिए प्रजापति ने उनका तेज एकत्रित किया था और उसे काली का रूप देकर प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न की थी । उस चण्डी ने अपने पराक्रम से असुरों को निरस्त किया था और देवताओं को उनका उचित स्थान दिलाया था । इस कथा में यही प्रतिपादन है कि सामूहिकता की शक्ति असीम है । इसका जिस भी प्रयोजन में उपयोग किया जायगा, उसी में असाधारण सफलता मिलती चली जायगी ।

दुर्गा का वाहन सिंह है । वह पराक्रम का प्रतीक है । दुर्गा की गति विधियों में संघर्ष की प्रधानता है । जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए हर किसी को आन्तरिक दुर्बलताओं और स्वभावतः दुष्प्रवृत्तियों से निरन्तर जूझना पड़ता है । बाह्य जीवन में अवांछनीयताओं एवं अनीतियों के आक्रमण होते रहते हैं और अवरोध सामने खड़े रहते हैं । उनसे संघर्ष करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है । शान्ति से रहना तो सभी चाहते हैं पर आक्रमण और अवरोधों से बच निकलना कठिन है । उससे संघर्ष करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । ऐसे साहस का, शौर्य का, पराक्रम का उद्भव गायत्री के अन्तर्गत दुर्गा तत्त्व के उभरने पर संभव होता है । गायत्री उपासना से अन्तराल में उसी स्तर की प्रखरता उभरती है । इसे दुर्गा का अनुग्रह साधक को उपलब्ध हुआ माना जाता है ।

१७–कुण्डलिनी :

गायत्री की एक शक्ति कुण्डलिनी है । कुण्डलिनी वह भौतिक ऊर्जा है जो जीवात्मा के साथ लिपटकर अत्यन्त घनिष्ठ हो गई है । इसे प्राण–विद्युत जीवन–शक्ति, ऊर्जा, योगाग्नि आदि नामों से जाना जाता है । नस–नाड़ियों में एक चैतन्य विद्युत गतिशील रहती है । इसके दो सिरे हैं जिन्हें ध्रुव केन्द्र माना जाता है । यह केन्द्र पृथ्वी के उत्तरी–दक्षिणी ध्रुवों की तरह हैं । उत्तरी ध्रुव है मस्तिष्क का मध्यविन्दु ब्रह्म–रन्ध्र । इसी स्थान पर सहस्रार चक्र है । इसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्मचेतना से है । जिस प्रकार उत्तरी ध्रुव केन्द्र का चुम्बकत्व अपने लिए आवश्यक शक्तियों तथा पदार्थों को ब्रह्माण्ड के अन्तर्ग्रही भण्डागार से उपलब्ध करता रहता है, उसी प्रकार सहस्रार चक्र में वह सामर्थ्य है कि व्यापक ब्रह्म–चेतना के भाण्डागार में संव्याप्त दिव्य शक्तियों में से अपने लिए आवश्यक क्षमताएँ अभीष्ट मात्रा में उपलब्ध कर सके । ब्रह्म रन्ध्र में कुण्डलिनी का एक सिरा है जिसे महासर्प कहते हैं । इसकी आकृति कुण्डलाकार है । शेषनाग, शिव सर्प आदि इसी के नाम हैं । गायत्री उपासना से इस महासर्प की मूर्छना जागृत की जाती है और उसकी प्रचण्ड क्षमता के सहारे अध्यात्म क्षेत्र में असंख्य विभूतियों का लाभ उठाया जाता है ।

कुण्डलिनी का दूसरा सिरा मूलाधार चक्र है । यह मल–मूत्र छिद्रों के मध्य एक छोटा शक्ति भँवर है, इसे दक्षिणी ध्रुव के समतुल्य कहा गया है । मानवी काया में पदार्थ ऊर्जा का उत्पादन और वितरण यहीं से होता है । प्रजनन की सामर्थ्य यहीं है । स्फूर्ति, उल्लास और साहस जैसी विशिष्टताऐं यहीं से उद्भूत होती हैं । मानवी–काया में काम करने वाली अनेकों शक्तियों का उद्गम केन्द्र यही है । स्थूल शरीर में मस्तिष्क और हृदय को प्रधान अवयव माना गया है । सूक्ष्म शरीर का मस्तिष्क, सहस्रार चक्र महासर्प है और हृदय मूलाधार चक्र । मूलाधार को कुण्डलिनी का दक्षिणी ध्रुव माना गया है । दोनों ध्रुवों का मध्यवर्ती प्रवाह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है । फलतः मनुष्य अन्य प्राणियों की तरह पेट, प्रजनन जैसे शरीर निर्वाह के तुच्छ काम ही कर पाता

है । कुण्डलिनी जागरण से दिव्य ऊर्जा जागृत होती है और मनुष्य की सामर्थ्य असामान्य बन जाती है । मूलाधार स्थित सर्पिणी अर्थात् प्राण ऊर्जा और सहस्रार स्थित महासर्प–ब्रह्म चेतना के मध्य आदान–प्रदान का द्वार खुल जाना ही कुण्डलिनी जागरण है । भौतिक और आत्मिक क्षमताओं का मिलन सम्पर्क वैसा ही चमत्कारी परिणाम उत्पन्न करता है, जैसा कि बिजली के दोनों तार परस्पर मिलते ही शक्तिशाली प्रवाह उत्पन्न करते हैं ।

मस्तिष्कीय सामर्थ्य को परिष्कृत बनाने का काम योग साधनाओं द्वारा किया जाता है । प्राण ऊर्जा में प्रचण्डता उत्पन्न करना और उसकी सामर्थ्य से भौतिक एवं आत्मिक शक्तियों को बलवती बनाना तंत्र–विज्ञान है । कुण्डलिनी तंत्र विद्या की अधिष्ठात्री है भूलोक का प्रतिनिधि मूलाधार है और ब्रह्मलोक का सहस्रार । दोनों का मध्यवर्ती आवागमन देवयान मार्ग से होता है । मेरुदण्ड ही देवयान मार्ग है । इस लम्बे मार्ग में षट्चक्र अवस्थित है । सातवाँ लक्ष्य विन्दु सहस्रार है । इन्हीं को सप्त लोक, सप्तसिन्धु, सप्तगिरी, सप्त ऋषि, सप्ततीर्थ, सप्तद्वीप, सप्ताह, सप्त धातु आदि के रूप में विस्तार हुआ है, कुण्डलिनी के जागरण से देवयान मार्ग के यह सभी सप्त सोपान जागृत होते हैं और साधक की सत्ता दिव्य क्षमताओं से सुसम्पन्न हो भर जाती है ।

मनुष्य में प्राण ऊर्जा की प्रचण्ड शक्ति मूलाधार चक्र के केन्द्र बिन्दु में अवलम्बित है और वहीं से समस्त शरीर में परिभ्रमण करती हुई सामान्य जीवन के अनेकानेक प्रयोजन पूरे करती रहती है । इसकी असाधारण क्षमता का पता इससे लगता है कि यह केन्द्र जननेन्द्रिय के माध्यम से सक्रिय होकर एक नया मनुष्य उत्पन्न करने में समर्थ होता है । मनुष्य में शौर्य, साहस, पराक्रम, उत्साह, उल्लास, स्फूर्ति, उमंग जैसी अनेक विशेषताएँ–क्षमताएँ यहीं से स्फुरित होती रहती हैं । कामोत्तेजन में इसी क्षमता की हलचलों का आभास मिलता है । प्रजनन प्रयोजनों में प्रायः उसका बड़ा भाग नष्ट होता रहता है ।

सामान्य प्राण को महाप्राण में परिणित करके ब्रह्म रन्ध्र तक पहुँचा देना और वहाँ के प्रसुप्त शक्ति–भण्डार को जगाकर मनुष्य को देवोपम बना देना कुण्डलिनी जागरण का उद्देश्य है । समुद्र–मन्थन से १४ रत्न

निकले थे, कुण्डलिनी के शक्ति सागर का मन्थन भी दिव्य शक्ति की रत्न राशि का द्वार साधक के लिए खोलता है । यही अधोगति को ऊर्ध्व गति में परिणति करने की प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण है । इस साधना में नाम बीज को शक्ति बीज में परिवर्तित किया जाता है । काली का महाकाल से, शिव का शक्ति से, प्राण का महाप्राण से मिलन होने पर उनकी संयुक्त शक्ति से चमत्कारी परिणाम उत्पन्न होते हैं । इसी को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं । गायत्री के ही एक प्रवाह कुण्डलिनी जागरण को गायत्री की तन्त्र पक्षीय उपलब्धि कहा गया है ।

कुण्डलिनी–जागरण की प्रक्रिया गायत्री साधना के अन्तर्गत ही सरल पड़ती है । हठयोग, प्राणयोग, तन्त्रयोग आदि के माध्यम से भी उसे एक सीमा तक जागृत किया जाता है । किन्तु परिपूर्ण उपयोग शक्ति और जागरण गायत्री के माध्यम से ही हो सकता है । गायत्री की चौबीस शक्तियों में से कुण्डलिनी भी है । गायत्री साधना की सौम्य प्रक्रिया अपनाकर साधकों को कुण्डलिनी–जागरण का लाभ अधिक निश्चिन्तता पूर्वक, बिना किसी प्रकार का जोखिम उठाये सरल रूप से मिल सकता है ।

१८–प्राणाग्नि

गायत्री के २४ प्रधान नामों एवं रूपों में 'प्राणाग्नि' भी है । प्राण एक सर्वव्यापी चेतना प्रवाह है । जब वह प्रचण्ड हो उठता है तो उसकी ऊर्जा अग्नि बनकर प्रकट होती है । प्राण–तत्व की प्रखरता और प्रचण्डता की स्थिति को प्राणाग्नि कहते हैं । अग्नि को दाहक, ज्योतिर्मय एवं आत्म सात् कर लेने की विशेषता से सभी परिचित हैं । प्राणाग्नि की दिव्य क्षमता जहाँ भी प्रकट होती है वहाँ से कषाय–कल्मषों का नाश होकर ही रहता है । जहाँ यह क्षमता उत्पन्न होती है वहाँ अन्धकार दीखेगा ही नहीं, सब कुछ प्रकाशवान ही दिखाई देगा । प्राणाग्नि की सामर्थ्य आपके सम्पर्क क्षेत्र को आत्म–सात कर लेती है । पदार्थ और प्राणी अनुकूल बनते हैं, अनुरूप ढलते चले जाते हैं । प्राणाग्नि सम्पन्न व्यक्तियों का वर्गीकरण ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी, के रूप में किया जाता है ।

प्राणाग्नि विद्या को पंचाग्नि विद्या कहा गया है । कठोपनिषद् में यम ने नचिकेता को पंचाग्नि विद्या सिखाकर उसे कृतकृत्य कर दिया था ।

यह पाँच प्राणों का विज्ञान और विनियोग ही है, जिसे जानने अपनाने वाला सच्चे अर्थों में महाप्राण बन जाता है ।

गायत्री को प्राणाग्नि कहा गया है गायत्री शब्द का अर्थ ही 'प्राण रक्षक' होता है । प्राणशक्ति प्रखर-प्रचण्ड बनाने की क्षमता से सुसम्पन्न बनना गायत्री साधना का प्रमुख प्रतिफल है । प्राणवान होने का प्रमाण सत्प्रयोजनों के लिए साहसिकता प्रदर्शित करने के रूप में सामने आता है । सामान्य लोग स्वार्थ पूर्ति के लिए दुष्कर्म तक कर गुजरने में दुस्साहस करते पाये जाते हैं । सदुद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ करने की तो मात्र कल्पना ही कभी-कभी उठती है । उसके लिए कुछ कर गुजरना ही बन पड़ता है । आदर्शों को अपनाने वालों को जीवन क्रम में कठोर संयम और अनुशासन का समावेश करना पड़ता है और हेय मार्ग पर चलने-चलाने वालों से विरोध असहयोग करना होता है । इस प्रबल पुरुषार्थ को कर सकने में महाप्राण ही सफल होते हैं ।

प्राण की बहुलता सत्प्रयोजनों के लिए साहसिक कदम उठाने-त्याग बलिदान के अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करने एवं सत्संकल्पों के निर्वाह में सुदृढ़ बने रहने के रूप में दृष्टिगोचर होती है । अनीति से लड़ने एवं परिस्थितिवश कठिनाई आने पर धैर्य बनाये रहने तथा निराशाजनक परिस्थिति में भी उज्ज्वल प्रभाव की आशा करने में भी प्राणवान होने का प्रमाण मिलता है । गायत्री उपासना से इस प्रखरता की अभिवृद्धि होती है ।

१९-भवानी

गायत्री का एक नाम भवानी है । इस रूप में आद्यशक्ति की उपासना करने से उस भर्ग-तेज की अभिवृद्धि होती है, जो अवांछनीयताओं से लड़ने और परास्त करने के लिए आवश्यक है । इसे एक शक्ति-धारा भी कह सकते हैं । भवानी के पर्यायवाचक दुर्गा, चण्डी, भैरवी, कंकाली आदि नाम हैं । इनकी मुख मुद्रा एवं भाव चेष्टा विकराल है । संघर्ष में उनकी गतिविधियाँ नियोजित हैं । उनका वाहन सिंह है । सिंह पराक्रम का, आक्रमण का प्रतीक है । हाथों में ऐसे आयुध हैं जो शत्रु को विदीर्ण करने के ही काम आते हैं । लोक व्यवहार में भवानी तलवार को

भी कहते हैं । उसका प्रयोजन भी अवांछनीयता का प्रतिरोध करना है । असुरों के शस्त्र उत्पीड़न के लिए प्रयुक्त होते हैं । उनके लिए भवानी शब्द का प्रयोग तभी होगा जब उनका उपयोग अनीति के विरोध और नीति के समर्थन में किया जा रहा हो ।

धर्म का एक पक्ष सेवा, साधना, करुणा, सहायता, उदारता के रूप में प्रयुक्त होता है । यह विधायक–सृजनात्मक पक्ष है । दूसरा पक्ष अनीति का प्रतिरोध है, इसके बिना धर्म न तो पूर्ण होता, न सुरक्षित रहता है । सज्जनता की रक्षा के लिए दुष्टता का प्रतिरोध भी अभीष्ट है । इस प्रतिरोध शक्ति को ही भवानी कहते हैं । दुर्गा एवं चण्डी के रूप में इसी की लीलाओं का वर्णन किया जाता है । 'देवी भागवत' में विशिष्ट रूप से और अन्यान्य पुराणों, उपपुराणों में सामान्य रूप से इसी महाशक्ति की चर्चा हुई है और उसे असुर विदारिणी, संकट निवारिणी के रूप में चित्रित किया गया है । अवतारों के दो उद्देश्य हैं–एक धर्म की स्थापना, दूसरा अधर्म का विनाश । दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं । सृजन ध्वंसकी द्विविध प्रतिक्रियाओं का अवलम्बन लेने से ही सुव्यवस्थ बन पाती है । भोजन जितना भी आवश्यक है उतना ही मल विसर्जन भी । उत्पादन एवं सम्बर्धन के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों के साथ आक्रमणकारी तत्वों से बचाव का भी प्रबन्ध करना पड़ता है । राजसत्ता को प्रजा पालन के अतिरिक्त उपद्रवों को रोकने के लिए सेना, पुलिस आदि के सुरक्षात्मक प्रयत्न भी करने पड़ते हैं । किसान को खेत और माली को बगीचे को उगाने, बढ़ाने के साथ–साथ रखाने का भी प्रबन्ध करना होता है अन्यथा उनका किया हुआ सारा परिश्रम, अवांछनीय तत्वों के हाथ चला जायेगा और वे उस अपहरण से अधिक प्रोत्साहित, परिपुष्ट होकर हानि पहुँचाने का दुस्साहस करेंगे । अस्तु, सज्जनता का परिपोषण जितना आवश्यक है उतना ही दुष्टता का उन्मूलन भी अभीष्ट है । इनमें से किसी एक को लेकर चलने से सुव्यवस्था रह नहीं सकती ।

संघर्ष का प्रथम चरण अपनी दुर्बुद्धि से जूझना है । निकृष्ट स्तर की दुर्भावनाएँ और कुविचारणाएँ अन्तराल में जड़ें जमा कर व्यक्ति को पतन, पराभव के गर्त में धकेलती हैं । बुरी आदतों के वशीभूत होकर मनुष्य दुर्व्यसनों और दुष्कर्मों में प्रवृत्त होता है । फलतः नाना प्रकार

के क्लेश सहता और कष्ट उठाता है । व्यक्तित्व में घुसे हुए कषाय–कल्मषों, कुसंस्कारों का उन्मूलन करने के लिए विभिन्न प्रकार की तप–तितिक्षाएँ अपनानी पड़ती हैं ।

लोक व्यवहार में यही दुष्प्रवृत्तियाँ आलस्य, प्रमाद, अस्वच्छता, अशिष्टता, अव्यवस्था, संकीर्ण स्वार्थपरता आदि रूपों में मनुष्य को उपेक्षित, तिरस्कृत बनाती हैं । इनकी मात्रा अधिक बढ़ जाने से व्यक्ति भ्रष्ट, दुष्ट आचरण करता है और पशु पिशाच कहलाता है । वासना, तृष्णा और अहन्ता की बढ़ोत्तरी से भी मनुष्य असामाजिक, अवांछनीयता, उच्छृंखल एवं आक्रामक बन जाता है । फलतः उसे घृणा एवं प्रताड़ना का दण्ड सहना पड़ता है । इस स्थिति से उबरने पर ही व्यक्ति को सुसंस्कृत एवं सुविकसित होने का अवसर मिलता है । आत्म–शोधन की साहसिकता भी भवानी है । आत्मविजय को सबसे बड़ी विजय कहा गया है ।

समाज में जहाँ सहकारिता, सज्जनता एवं रचनात्मक प्रयत्नों का क्रम चलता है, वहाँ दुष्टता, दुरभिसंधियाँ भी कम नहीं हैं । अवांछनीयता अनैतिकता, मूढ़ मान्यताओं का जाल बुरी तरह बिछा रहता है । उन्हीं के कारण अनेकानेक वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याएँ उठती एवं विकृतियाँ बढ़ती रहती हैं । इनसे लड़ने के लिए वैयक्तिक एवं सामूहिक स्तर पर प्रचण्ड प्रयास होने ही चाहिए । इसी प्रयत्नशीलता को चण्डी कहते हैं । भवानी यही है । सृजन और संघर्ष के अन्योन्याश्रय तत्वों में से संघर्ष की आवश्यकता को सुझाने वाला और उसे अपनाने का प्रोत्साहन देने वाला स्वरूप भवानी है । सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री गायत्री का एक पक्ष संघर्षशील, शौर्य, साहस के लिए भी मार्ग दर्शन करता है । इस शक्ति का गायत्री साधना से सहज संवर्धन होता है ।

२०–भुवनेश्वरी :

भुवनेश्वरी अर्थात् संसार भर के ऐश्वर्य की स्वामिनी । वैभव–पदार्थों के माध्यम से मिलने वाले सुख–साधनों को कहते हैं । ऐश्वर्य–ईश्वरीय गुण है । वह आन्तरिक आनन्द के रूप में उपलब्ध होता है । ऐश्वर्य की परिधि छोटी भी होती है और बड़ी भी । छोटा ऐश्वर्य छोटी–छोटी सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने पर उनके चरितार्थ होते समय सामयिक रूप से

मिलता रहता है । यह स्व उपार्जित, सीमित आनन्द देने वाला और सीमित समय तक रहने वाला ऐश्वर्य है । इसमें भी स्वल्पकालीन अनुभूति होती है और उसका रस कितना मधुर होता है यह अनुभव करने पर अधिक उपार्जन का उत्साह बढ़ता है ।

भुवनेश्वरी इससे ऊँची स्थिति है । उसमें सृष्टि भर का ऐश्वर्य अपने अधिकार में आया प्रतीत होता है । स्वामी रामतीर्थ अपने को राम बादशाह कहते थे । उनको विश्व का अधिपति होने की अनुभूति होती थी । फलतः उस स्तर का आनन्द लेते थे जो समस्त विश्व के अधिपति होने वाले को मिल सकता है । छोटे–छोटे पद पाने वाले–सीमित पदार्थों के स्वामी बनने वाले, जब अहंता को तृप्त करते और गौरवान्वित होते हैं तो समस्त विश्व का अधिपति होने की अनुभूति कितनी उत्साहवर्धक होती होगी, इसकी कल्पना भर से मन आनन्द विभोर हो जाता है । राजा छोटे से राज्य के मालिक होते हैं, वे अपने को जितना श्रेयाधिकारी, सम्मानास्पद एवं सौभाग्यवान अनुभव करते हैं, इसे सभी जानते हैं । छोटे–बड़े राजपद पाने की प्रतिस्पर्द्धा इसीलिए रहती है कि आधिपत्य का अपना गौरव और आनन्द है ।

यह वैभव का प्रसंग चल रहा है । यह मानवी एवं भौतिक है । ऐश्वर्य दैवी, आध्यात्मिक, भावनात्मक है । इसलिए उसके आनन्द की अनुभूति उस अनुपात से अधिक होती है । भुवन भर की चेतनात्मक आनन्दानुभूति का आनन्द जिसमें भरा हो उसे भुवनेश्वरी कहते हैं । गायत्री की यह दिव्यधारा जिस पर अवतरित होती है उसे निरन्तर यही लगता है कि उसे विश्व भर के ऐश्वर्य का अधिपति बनने का सौभाग्य मिल गया है । वैभव की तुलना में ऐश्वर्य का आनन्द असंख्य गुना बड़ा है । ऐसी दशा में सांसारिक दृष्टि से सुसम्पन्न समझे जाने की तुलना में भुवनेश्वरी की भूमिका में पहुँचा हुआ साधक भी लगभग उसी स्तर की भाव संवेदनाओं से भरा रहता है जैसा कि भुवनेश्वर भगवान को स्वयं अनुभव होता होगा ।

भावना की दृष्टि से यह स्थिति परिपूर्ण आत्मगौरव की अनुभूति है । वस्तुस्थिति की दृष्टि से इस स्तर का साधक ब्रह्मभूत होता है, ब्राह्मी स्थिति में रहता है इसलिए उसकी व्यापकता और समर्थता भी प्रायः

परब्रह्म के स्तर की बन जाती है । वह भुवन भर में बिखरे पड़े विभिन्न प्रकार के पदार्थों का नियंत्रण कर सकता है । पदार्थों और परिस्थितियों के माध्यम से जो आनन्द मिलता है उसे अपने संकल्प बल से अभीष्ट परिमाण में आकर्षित उपलब्ध कर सकता है ।

भुवनेश्वरी मनःस्थिति में विश्व भर की अन्तःचेतना अपने दायित्व के अन्तर्गत मानती है । उसकी सुव्यवस्था का प्रयास करती है । शरीर और परिवार का स्वामित्व अनुभव करने वाले इन्हीं के लिए कुछ करते रहते हैं । विश्व भर को अपना ही परिकर मानने वाले का निरन्तर विश्वहित में ध्यान रहता है । परिवार सुख के लिए शरीर सुख की परवाह न करके प्रबल पुरुषार्थ किया जाता है । जिसे विश्व परिवार की अनुभूति होती है वह जीव जगत से आत्मीयता साधता है । उनकी पीड़ा और पतन को निवारण करने के लिए पूरा-पूरा प्रयास करता है । अपनी सभी सामर्थ्यों को निजी सुविधा के लिए उपयोग न करके व्यापक विश्व की सुख-शान्ति के लिए नियोजित रखता है ।

वैभव उपार्जन के लिए भौतिक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है । ऐश्वर्य की उपलब्धि भी आत्मिक पुरुषार्थ से ही संभव है । व्यापक ऐश्वर्य की अनुभूति तथा सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए साधनात्मक पुरुषार्थ करने पड़ते हैं । गायत्री उपासना में इस स्तर की साधना जिस विधि-विधान के अन्तर्गत की जाती है उसे 'भुवनेश्वरी' कहते हैं ।

२१-अन्नपूर्णा

जीवन की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं में प्रथम नाम 'अन्न' का आता है । भोजन के काम आने वाले धान्यों तथा अन्य पदार्थों को भी अन्न ही कहा जाता है । गायत्री की एक शक्ति अन्नपूर्णा है, इसका प्रभाव अन्नादि की आवश्यकताओं की सहज पूर्ति होते रहने के रूप में अनुभव होता है । प्रायः गृह-लक्ष्मियों को अन्नपूर्णा कहते हैं । वे अपनी दूरदर्शिता, सुव्यवस्था के द्वारा घर में ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होने देतीं जिससे अभाव ग्रस्तता का कष्ट असंतोष एवं उपहास सहन करना पड़े । गृहलक्ष्मी जैसी सुसंस्कारी समझदार को भी अन्नपूर्णा कहते हैं । वह जहाँ भी रहेगी वहाँ दरिद्रता के दर्शन नहीं होते । परिस्थितियाँ संतोषजनक बनी रहती हैं ।

अन्नपूर्णा गायत्री की वह चेतना शक्ति है जिसका साधक पर अवतरण होने से अभाव ग्रस्तता की व्यथा सहनी नहीं पड़ती है । आवश्यकताओं, की पूर्ति का असमंजस खिन्न उद्विग्न नहीं करता । तृप्ति, तुष्टि और शान्ति की मनःस्थिति साधन-सामग्री के बाहुल्य से नहीं मिल सकती । ईंधन मिलने से तो आग और भड़कती जाती है । शान्ति तो जल से होती है । जल है संतोष, जिसमें औसत नागरिक के स्तर का निर्वाह पर्याप्त माना जाता है और अहंता की तृप्ति के लिए वैभव का प्रदर्शन नहीं महानता का आदर्श अपनाना आवश्यक समझा जाता है । इस स्तर की सद्‌बुद्धि का उदय होते ही लगता है कि जीवन सम्पदा अपने आप में परिपूर्ण है । उसमें विभूतियों के अजस्र भण्डार भरे पड़े हैं । वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वे प्रचुर परिमाण में सहज ही उपलब्ध हैं ।

इस अनुभूति के फलस्वरूप मनुष्य सम्पदा कमाने और वैभव दिखाने की मूर्खता से विरत होता है । अपनी क्षमताओं को आदर्शों के परिपालन में लगाता है । व्यक्तित्व को महान बनाने की महत्त्वाकांक्षा जगाता है और अपने पौरुष को उन प्रयोजनों के निरत करता है जिनसे लोक मंगल के साधन सधते हैं । सृष्टा की विश्ववाटिका को अधिकाधिक सुन्दर समुन्नत बनाने के लिए किया गया हर प्रयत्न बिना सफलता-असफलता की प्रतीक्षा किए हर घड़ी उच्चस्तरीय संतोष प्रदान करता रहता है । इसी आस्था को अन्नपूर्णा कहते हैं । गायत्री की यह अन्नपूर्णा धारा साधक को सहज संतोष के स्वर्गीय आनन्द का रसास्वादन निरन्तर कराती है ।

गायत्री उपासना से साधकों की आर्थिक स्थिति संतोषजनक रहती है और धन-धान्य का घाटा नहीं पड़ता । उन्हें ऋणी नहीं रहना पड़ता । असंतोष की आग में जलते रहने, लिप्सा-लालसाओं से उद्विग्न रहने की विपत्ति भी उन्हें संत्रस्त नहीं करती । इसका कारण यह नहीं है कि उनके कोठों पर आसमान से अनाज की वर्षा होती है, या खेतों में चौगुनी फसल उत्पन्न होती है वरन् कारण यह है कि साधनों को उपार्जित करने के लिए वे योग्यता बढ़ाने और कठोर परिश्रम करने में दत्तचित्त रहते हैं । दरिद्र तो आलसी प्रमादी रहते हैं । जिन्हें पुरुषार्थ

परायणता में रुचि है, जो श्रम एवं मनोयोग के सृजनात्मक प्रयोजनों में नियोजित रहते हैं, उन्हें निर्वाह के आवश्यक साधन जुटाने में कमी कभी नहीं पड़ती । यह अन्नपूर्णा प्रवृत्ति है जो गायत्री उपासकों के स्वभाव का अंग बनकर रहती है ।

अन्नपूर्णा प्रवृत्ति का दूसरा पक्ष है–मितव्ययता । उपलब्ध साधनों का इस प्रकार उपयोग करना जिससे शारीरिक, पारिवारिक एवं पारमार्थिक उद्देश्य सन्तुलित रूप से पूरे होते रहें । यह ऐसी सुसंस्कारिता है, जिसे अपनाये बिना कुबेर को भी दरिद्र बनकर रहना पड़ता है । व्यसन, फैशन, चटोरपन, विलासिता, उद्धत प्रदर्शन, शेखीखोरी, यारवाशी, आवारागर्दी जैसे दुर्गुणों में कोई व्यक्ति कितना ही धन अपव्यय कर सकता है । ऐसी दशा में आजीविका कितनी ही बढ़ी–चढ़ी क्यों न हो वहाँ सदा तंगी ही बनी रहेगी और उस कमी को पूरा करने के लिए रिश्तवखोरी–बेईमानी की ललक भड़कती रहेगी । यह सब करते रहने पर भी वह स्थिति नहीं आती, जिसमें संतोष अनुभव किया जा सके तथा आय–व्यय का संतुलन बिठाया जा सके । सम्पन्नता इस अर्थ–सन्तुलन को ही कहते हैं और वह धन के परिमाण पर नहीं, उस सत्प्रवृत्ति पर निर्भर है, जो उपार्जन की योग्यता बढ़ाने में तथा अथक श्रम करने के लिए प्रोत्साहित करती है । साथ ही एक–एक पाई के सदुपयोग का मितव्ययता का महत्व भी सिखाती है । ऐसे व्यक्ति सीमित आजीविका का भी ऐसा क्रमबद्ध उपयोग करते हैं जिससे उतने में ही ऐसी व्यवस्था बन जाती है, जिसे देखकर सुसम्पन्नों को भी ईर्ष्या होने लगे । इसी परिस्थिति का नाम अन्न पूर्णा है ।

साधनों का उपार्जन एक–पक्ष है–उपयोग दूसरा है । दोनों को मिलाकर चलने से ही सुसम्पन्नता बनती है । आमतौर से सम्पत्ति की बहुलता को ही सम्पन्नता माना जाता है । यह भारी भ्रम है । दुर्बुद्धि के रहते सम्पत्ति का उपयोग दुष्ट प्रयोजनों में ही होगा और उससे व्यक्ति, परिवार और समाज को प्रकारान्तर से अनेकानेक हानियाँ सहन करनी पड़ेंगी । महत्व साधनों की मात्रा का नहीं वरन् उस दूरदर्शिता का है जो सत्प्रयोजनों में अभीष्ट साधन जुटा लेने में पूर्णतया सफल होती है और कुशल उपयोग के आधार पर सीमित साधनों से ही सामयिक

आवश्यकताओं को सुसंतुलित रीति से पूरा कर लेती हैं । यह सद्‌बुद्धि जहाँ भी होगी वहाँ अन्नपूर्णा कही जाने वाली सन्तुष्ट मनःस्थिति एवं प्रसन्न परिस्थितियों का दर्शन सदा ही होता रहेगा ।

२२–महामाया :

माया कहते हैं भ्रान्ति को–महामाया कहते हैं निर्भ्रान्ति को । माया पदार्थ परक है और महामाया ज्ञान परक । मान्वी सत्ता सीमित रहने से वह समग्र का दर्शन नहीं कर पाती और जितनी उसकी परिधि है उसी को सब कुछ मान लेती है । मेंढक कुए को ही समग्र विश्व मानता है, उसकी सीमित परिस्थिति में यही संभव भी है किन्तु यदि उसे कुएँ से बाहर निकलने का, आकाश में उड़ने का–ब्रह्माण्डीय आकाश में विचरण करने का अवसर मिले तो पता चलेगा कि कुएँ में सीमित विश्व की पूर्व मान्यता गलत थी, यों उस समय वही सत्य तथ्य प्रतीत होती थी ।

जीव माया बन्धनों में बँधा है अर्थात् संकीर्णता की परिधि में आबद्ध है । इच्छाएँ, विचारणायें, क्रियाएँ इसी भ्रमजाल में फँसी होने के कारण अवांछनीय स्तर की रहती हैं और उस जंजाल में कस्तूरी के हिरन की तरह मृग मरीचिका में भटकने की तरह जीव सम्पदा का अपव्यय ही होता रहता है । माया से छूटने के प्रयत्नों में जिज्ञासु मुमुक्षु संलग्न रहते हैं । जिस आत्म ज्ञान को जीवन को सफल बनाने वाली उपलब्धि बताया जाता है, उसी का नाम महामाया है । माया बद्ध दुःख पाते हैं और महामाया की शरण में पहुँचने वाले परम शान्ति का रसास्वादन करते हैं । उन्हें श्रेय पथ प्रत्यक्ष दीखता है । उभरे हुए आत्मबल के सहारे उस पर चल पड़ना भी सरल रहता है ।

आत्मा को अपना अस्तित्व शरीर मात्र मान लेना पहले सिरे की भ्रान्ति है । इसी की खुमारी में मनुष्य वासना, तृष्णा, अहन्ता की बाल क्रीड़ा में उलझता हुआ मानव जन्म के सुयोग को पशु–प्रयोजनों में गँवा देता है । अन्ततः खाली हाथ विदा होता है और पाप की गठरी सिर पर लादे ले जाना, चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण के बाद मिले हुए सुअवसर को गँवा बैठने पर रुदन करना–जीवन भर पाप–ताप के दुःसह दुःख सहना, यह समस्त दुर्गति माया रूपी भ्रान्ति में जकड़े रहने का

दुष्परिणाम है । इस महासंकट से महामाया ही छुड़ाती है ।

गायत्री को महामाया कहा गया है । साधना से उसका अनुग्रह साधक की अन्तरात्मा में उतरता है और निर्भ्रान्त स्थिति तक पहुँचने का अवसर मिलता है । यही दिव्य दृष्टि है–ज्ञान–चक्षु का उन्मीलन इसी को कहते हैं । जीवन रहस्यों का उद्‌घाटन इसी स्थिति में होता है । जकड़ने वाले जंजाल पके हुए पत्तों की तरह झड़ जाते हैं और आत्म जागरण के कारण सब कुछ नये सिरे से देखने–सोचने का अवसर मिलता है, रात्रि स्वप्नों के बाद प्रातःकाल का जागरण जिस प्रकार सारी स्थिति ही बदल देता है उसी प्रकार महामाया का अनुग्रह, जग्रति की भूमिका में प्रवेश करने का द्वार खोलता है और इच्छा, विचारणा तथा क्रिया का स्वरूप ऐसा बना देता है जिसमें देवोपम स्वर्गीय जीवन का आनन्द मिलता रहे और बन्धन मुक्ति की ब्रह्मानुभूति का रसास्वादन अनवरत रूप से उपलब्ध होता रहे । महामाया परब्रह्म की समीपता तक पहुँचा देने वाली सच्ची देवमाता कही गई है । देवत्व ही उसका अनुग्रह है । गायत्री उपासना एक स्तर पर महामाया के रूप में साधक को हर दृष्टि से कृतकृत्य बनाती देखी गई है ।

२३–पयस्विनी

पयस्विनी गौ माता को कहते हैं । स्वर्ग में निवास करने वाली कामधेनु को भी पयस्विनी कहा गया है । गायत्री साधना की सफलता के लिए साधक में ब्राह्मणत्व और गौ के सान्निध्य में अत्यन्त घनिष्टता है । पंचामृत पंचगव्य को अम्रतोपम माना गया है । गोमय गोमूत्रं की उर्वरता और रोग निवारिणी शक्ति सर्वविदित है । भारतीय कृषिकर्म के लिए गौवंश के बिना काम ही नहीं चल सकता । पोषक आहार में गोरस अग्रणी है । गौ की संरचना में आदि से अन्त तक सात्विकता भरी पड़ी है । पयस्विनी का महत्व जब इस देश में समझा जाता था, तब यहाँ दूध की नदियाँ बहती थीं और मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से देवोपम जीवनयापन करते थे ।

गायत्री साधक के अन्तःकरण में कामधेनु का अवतरण होता है । उसकी कामनाऐं भावनाओं में बदल जाती हैं । फलतः साधक को संसार

के बड़े से बड़े कष्ट–असंतोष से सहज ही निवृत्ति मिल जाती है । कामनाऐं असीम हैं । एक के तृप्त होते ही दूसरी उससे भी बड़े आकार में उठ खड़ी होती है । संसार भर के समस्त साधन–सम्पदा मिल कर भी किसी एक मनुष्य की कामनाऐं पूर्ण नहीं कर सकती । पूर्ण तो सद्भावनाऐं होती हैं, जो अभीष्ट परिणाम न मिलने पर भी अपनी इच्छा और चेष्टा में उत्कृष्टता भरी रहने के कारण आनन्द, उल्लास से उमगती रहती हैं । चिन्तन के इसी स्तर को कल्प वृक्ष कहते हैं । प्रकारान्तर से यही कामधेनु है ।

कामधेनु गायत्री माता द्वारा प्रेरित प्रदत्त वह प्रवृत्ति है जो अन्तरात्मा में उच्चस्तरीय, अध्यात्म–आस्था के रूप में प्रकट होती है । यह साधक को वैसा ही आनन्द देती है जैसा बच्चे को अपनी माता का पयपान करते समय मिलता है । इसी को आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द परमानन्द कहते हैं । पूर्णता की परम तृप्ति पाना ही जीवन लक्ष्य है । गायत्री का उच्चस्तरीय अनुग्रह इसी रूप में उपलब्ध होता है । यही तृप्ति वरदान कामधेनु की उपलब्धि है गायत्री साधक उस दैवी अनुकम्पा का रसास्वादन करते और साधना की सफलता का अनुभव करते हैं ।

गायत्री वर्ग में पाँच गौ परक श्रेष्ठताओं का समावेश है । गायत्री गंगा, गौ, गीता गोविन्द । गंगा और गायत्री का जन्मदिन एक ही है । गौ सेवा के सम्मिश्रण से वह त्रिवेणी बन जाती है । गायत्री उपासना की सफलता में गौ सम्पर्क हर दृष्टि से सहायक होता है ।

गायत्री को कामधेनु कहा गया है । कामधेनु और पयस्विनी पर्यायवाची हैं । कामधेनु की चर्चा करते हुए शास्त्रकारों ने उसे कल्पवृक्ष के समान मनोकामनाओं की पूर्ति करने की विशेषता से युक्त बताया है । कामनाऐं तो इतनी असीम हैं कि उनकी पूर्ति कर सकना भगवान तक के लिए सम्भव नहीं हो सकता, पर कामनाओं को परिष्कृत करके वह आनन्द प्राप्त किया जा सकता है जिनकी कामनाओं की पूर्ति होने पर मिलने की कल्पना की जा सकती है ।

देवता आप्तकाम होते हैं । आप्तकाम उसे कहते हैं जिसकी समस्त कामनाऐं पूर्ण हो जायें । पूर्ण एवं तृप्त वे उच्चस्तरीय कामनाऐं ही हो सकती हैं, जिन्हें सद्भावना कहते हैं । उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श पालन

में किसी को कभी कुछ कठिनाई नहीं हो सकती । सद्भावनाओं को हर हालत में चरितार्थ किया जा सकता है । आप्तकाम को ही तुष्टि, तृप्ति एवं शान्ति का आनन्द मिलता है । कल्पवृक्ष स्वर्ग में है–देवता आप्तकाम होते हैं । कल्पवृक्ष कामनाओं की पूर्ति करता है । यह समस्त प्रतिपादन एक ही तथ्य को प्रकट करता है कि देवत्व और आप्तकाम स्थिति एक ही बात है । अतृप्ति की उद्विग्नता देवताओं के पास फटकने नहीं पाती । यह सब लिप्सा–लालसाओं को, कामनाओं को सद्भावनाओं और शुभेच्छाओं में बदलने से ही सम्भव हो सकता है । कल्पवृक्ष और कामधेनु दोनों की विशेषता यही है कि वे कामनाओं की तत्काल पूर्ति कर देते हैं । गायत्री को कल्पवृक्ष भी कहते हैं और कामधेनु भी, उसकी छाया में बैठने वाला, पयपान करने वाला आप्तकाम रहता है । कामनाओं के परिष्कृत और लालसाओं के समाप्त होने पर मनुष्य को असीम संतोष एवं अजस्र आनन्द की प्राप्ति होती है । कामधेनु की अनुकम्पा इसी रूप में होती है । कथा है कि गुरु वशिष्ठ के पास कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गाय थी । उसने राजा विश्वामित्र को उपहार भी दिया था और कुकृत्य का दण्ड भी । नन्दिनी के इन्हीं चमत्कारों से प्रभावित होकर विश्वामित्र ने राज्य छोड़कर तप करने का निश्चय किया था । यह नन्दिनी अथवा कामधेनु ही है ।

कामधेनु का पयपान करने वाले देवता अजर–अमर रहते हैं । अजर अर्थात् जरा रहित, बुढ़ापे से दूर चिर यौवन का आनन्द लेने वाले । शरीर क्रम में तो यह सम्भव नहीं, सृष्टि क्रम में हर शरीर को जन्म–मरण के चक्र में घूमना पड़ता है और समयानुसार वृद्धावस्था भी आती है । कामधेनु का पयपान करने से जिस स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्राप्ति की चर्चा की गई है, वह शारीरिक नहीं मानसिक और आत्मिक है । गायत्री उपासक कामधेनु का कृपापात्र मानसिक दृष्टि से सदा युवा ही बना रहता है । उसकी आशायें उमंगें कभी धूमिल नहीं पड़ने पातीं । आँखों में चमक, चेहरे पर तेज, होठों पर मुसकान कभी घटती नहीं है । यही चिर यौवन है । इसी को अजर स्थिति कहते हैं । कामधेनु का, गायत्री का यह देवोपम स्वर प्रत्यक्ष वरदान है । कामधेनु का पयपान करने वाले अमर हो जाते हैं । गायत्री उपासक भी अमर होते हैं ।

शरीर धारण करने पर तो हर किसी को समयानुसार मरना ही पड़ेगा, पर आत्मा की वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाने पर अमरता का ही अनुभव होता है । शरीर बदलते रहने पर भी मरण जैसी विभीषिका आत्मज्ञानी के सामने खड़ी नहीं होती । उसके सत्कर्म ऐसे आदर्श एवं अनुकरणीय होते हैं कि उनके कारण यश अमर ही बना रहता है । गायत्री को पयस्विनी इसी कारण कहा गया है और उसे धरती की कामधेनु कहकर पुकारा गया है ।

२४–त्रिपुरा

दक्षिणमार्गी गायत्री साधना त्रिपदा कहलाती है और वाममार्गी को त्रिपुरा नाम से सम्बोधित किया जाता है । त्रिपदा का कार्यक्षेत्र–सत्यं शिवम् सुन्दरम्–स्वर्ग, मुक्ति और शान्ति है । सत्–चित्–आनन्द–ज्ञान, कर्म, भक्ति है । त्रिपुरा में उत्पादन–अभिवर्द्धन–परिवर्तन–धन–बल–कौशल–साहस, उत्साह, पराक्रम की प्रतिभा, प्रखरता भरी पड़ी है । आत्मिक प्रयोजनों के लिए त्रिपदा का और भौतिक प्रयोजनों के लिए त्रिपुरा का आश्रय लिया जाता है । योग और तंत्र के दो पथ इन्हीं दो प्रयोजनों के लिए हैं ।

साधनाग्रन्थों में त्रिपुरा महाशक्ति को त्रिपुर सुन्दरी–त्रिपुर भैरवी के नाम भी दिये गये हैं । इन रूपों में उसके कितने ही कथानक हैं । देवी भागवत एवं मार्कण्डेय पुराण में इनका वर्णन, विवेचन अधिक विस्तारपूर्वक हुआ है । उनके प्रभाव और प्रयोगों का वर्णन अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है । त्रिपुर भैरवी का लीला प्रयोजन असुर विदारिणी विपत्ति निवारिणी के रूप में हुआ है । वह विकराल एवं युद्धरत है । त्रिपुर सुन्दरी को सिद्धिदात्री, सौभाग्यदायिनी, सर्वांग–सुन्दर बनाया गया है । भैरवी अभयदान देती है और सुन्दरी का अनुग्रह भीतरी और बाहरी क्षेत्र को सुखद सौन्दर्य से भरा बनाता है ।

महिषासुर, मधुकैटभ, शुम्भ–निशुम्भ, रक्तबीज, वृत्तासुर आदि दैत्यों को निरस्त करने की गाथाओं में त्रिपुरा के प्रचण्ड पराक्रम का उल्लेख है । अज्ञान–अभाव, आलस्य, प्रमाद, पतन, पराभव जैसे संकट ही वे असुर हैं, जिन्हें त्रिपुरा के साहस, पराक्रम, उत्साह, का त्रिशूल विदीर्ण

करके रख देता है । तंत्र सम्प्रदाय में इस त्रिविध संघ को दुर्गा-काली-कुण्डलिनी का नाम दिया गया है । इन्हीं को चण्डी महाशक्ति, अम्बा आदि नामों से सम्बोधित किया गया है । कालरात्रि-महारात्रि- मोहरात्रि के रूप में होली, दिवाली एवं शिवरात्रि के अवसर पर विशिष्ट उपासना की जाती है । क्रिया योग, जप योग, ध्यान योग से त्रिपदा और प्राण योग, हठ योग और तंत्र योग से त्रिपुरा की साधना की जाती है । एक को योगाभ्यास की और दूसरी को तपश्चर्या की अधिष्ठात्री कहा जाता है ।

त्रिपदा और त्रिपुरा को परा और अपरा कहा गया है । दोनों की सम्मिलित साधना से प्राण और काया के समन्वय से चलने वाले जीवन जैसी स्थिति बनती है । ब्रह्मवर्चस् साधना में दोनों को परस्पर पूरक माना गया है और उनको संयोग, सुयोग का-ओजस्, तेजस् का ऋद्धि-सिद्धि का-ज्ञान एवं वैभव का समन्वित आधार कहा गया है । यह गायत्री महाशक्ति की ही दिव्य धाराऐं हैं, जिन्हें साधना द्वारा व्यक्तित्व के क्षेत्र में आमंत्रित अवतरित किया जा सकता है ।

शक्तिधाराओं की साधनाओं का निर्धारण

गायत्री महामंत्र एक है किन्तु परमाणु की तरह उसके अन्तःक्षेत्र में भी अनेक घटक हैं । इन घटकों में से प्रत्येक अपनी विशिष्ट क्षमता रखते हुए भी मूलतः एक ही शक्ति केन्द्र के साथ जुड़ा है और उसी से अपना पोषण प्राप्त करता है । हृदय एक है, नाड़ियाँ अनेक । हर नाड़ी का अपना स्वरूप, कार्यक्षेत्र और उत्तरदायित्व है इतने पर भी वे सभी एक ही केन्द्र पर केन्द्रीभूत हैं । गायत्री को हृदय और उसकी चौबीस शक्तियों को बयालीस शक्तिधाराऐं कहा जा सकता है । गायत्री हिमालय है उससे निकलने वाली सरिताओं के समतुल्य गायत्री की भी विशिष्ट शक्तियाँ हैं । संसार की सृष्टि संचालन शक्ति एक ही है-महाप्रकृति । उसके क्षेत्र में जड़-चेतन अनेकों शक्तियाँ काम करती है-हीट, लाईट, मोशन, ग्रेविटेशन, इन्टलेक्ट आदि । इलैक्ट्रिसिटी, कास्मिक प्रकृति अनेकों शक्तिधाराऐं अपने-अपने क्षेत्र में काम करती हैं । जीवनी शक्ति में भी विचारणा भावना आस्था आदत जैसी कितनी ही धारायें हैं । इतने पर

भी वे सब एक ही स्रोत से अपना पोषण प्राप्त करती हैं । आद्य शक्ति गायत्री को भी विश्व चेतना के अन्तर्गत गतिशील अनेकानेक प्रवाहों का उद्गम केन्द्र प्रेरणा स्रोत मानना चाहिए । समस्त देवी–देवता उसी की छाया में अपने–अपने उत्तरदायित्वों को निभाते, कार्यक्षेत्रों को सँभालते हैं ।

समग्र गायत्री उपासना के तीन स्वरूप हैं । (१) नित्यकर्म में दैनिक साधना (२) विशिष्ट उपचार–अनुष्ठान–पुरश्चरण (३) उच्चस्तरीय तप साधन–पंचकोशों का अनावरण, कुण्डलिनी जागरण । इनके लिए दक्षिण मार्गी और वाम मार्गी–योग और तंत्र के दो साधन विधान काम में लाये जाते हैं ।

विशेष प्रयोजन के लिए गायत्री की चौबीस शक्तिधाराओं में से आवश्यकतानुसार उनकी विशिष्ट साधनायें भी की जाती हैं । उसके लिए निर्धारित विधि–विधानों में प्रथकता है । उनके अलग–अलग बीज मंत्र हैं, जो गायत्री मंत्र में व्याहृतियों के उपरान्त और तत्सवितुर्वरेण्यं के उपरान्त नियोजित किये जाते हैं । दक्षिण मार्ग में प्रतिमाऐं प्रयुक्त होती हैं । जिनकी आकृतियाँ, वाहन तथा आयुध प्रथक प्रकार के हैं । तंत्र में प्रतिमाओं के स्थान पर यन्त्र काम में लाये जाते हैं । इन्हें रेखाचित्र कह सकते हैं । ये इनके केन्द्र स्थल हैं । जिस प्रकार त्रिपदा गायत्री के ब्राह्मी, वैष्णवी, शाम्भवी तीन रूप हैं और उनके साधना काल तथा पूजा विधान पृथक है उस प्रकार चतुर्विंशाक्षरा गायत्री के प्रत्येक अक्षर की पूजा पद्धति भी अलग–अलग है ।

इन विधानों की एक जैसी प्रक्रिया हर किसी के लिए प्रयुक्त नहीं होती । इस निर्धारण के लिए साधक के स्वभाव संसार एवं अभाव को ध्यान में रखकर उपचार विधान के अन्दर काम करना पड़ता है । एक ही शक्ति धारा के विभिन्न व्यक्तियों के लिए उनकी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप पृथक–पृथक् विधानों का निर्धारण किया जाता है । असंख्य प्रकृति के व्यक्तियों के लिए उनकी सामयिक स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप निर्धारण करना इस विधा के विशेषज्ञों का काम है । सामान्य साधना सबके लिए समान है, पर चौबीस विशिष्ट प्रवाहों का उपयोग करने के लिए अनुभवी पारंगतों का परामर्श एवं सहयोग आवश्यक है । साधना प्रयोजनों में गुरु को–अनुभवी मार्गदर्शक को वरण

करना इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए आवश्यक माना गया है । पुस्तकों की सहायता से इस प्रकार के गम्भीर निर्णय स्वेच्छानुसार स्वयं ही कर लेना कई बार अहितकर भी सिद्ध हो सकता है ।

व्यक्तियों के स्तरों उनकी आवश्यकताओं से तालमेल बिठाने वाले उपासना विधानों का निर्धारण बहुत विस्तृत हो सकता है । बारीकियों की चर्चा करते हुए इस प्रकार का साधना शास्त्र अत्यधिक बढ़े-चढ़े कलेवर का हो सकता है । इतना सब कुछ लिख सकना आज की परिस्थितियों में सम्भव नहीं । चिकित्सा शास्त्र और औषधि निर्माण की व्यवस्था होते हुए भी रोगी की स्थिति के अनुरूप चिकित्सा निर्धारण और उतार-चढ़ावों के अनुरूप बारबार परिवर्तन की आवश्यकता बनी ही रहती है । ठीक इस प्रकार गायत्री की २४ शक्तिधाराओं में से कब, किसे, क्यों, किस प्रकार, क्या साधना विधान अपनाना चाहिए, इसका निर्धारण करने के लिए अनुभवी मार्गदर्शक की सहायता प्राप्त करने से ही काम चलता है ।

इस प्रकार की सहायता इन दिनों ब्रह्म-वर्चस् आरण्यक, शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में उपलब्ध है । जबावी पत्र भेजकर अथवा पहुँचकर आवश्यकतानुसार परामर्श प्राप्त किया जा सकता है ।

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।